आज्ञाकारिणी थीं और पति से दृढ़ प्रेम करती थीं । वे भगवान के चरण कमलों में (भी) विनम्रभाव से दृढ़ प्रेम रखती थीं ।

शब्दार्थ महिपाला=राजा, भक्त-भय-हारी=भक्तों के भय हरने वाले; सुख-जुत=सुखपूर्वक; मधुमास=चैत्रमास; अविजित=विजयी; सुरभि=सुगंध; बाऊ=वायु; चाउ=उत्साह; विप्र=ब्राह्मण: धेनु=गाय; मनुज=मानव; गोपार=इन्द्रियों से परे;

भावार्थ राजा का चौथापन (वृद्धावस्था) आ पहुँचा; इससे ग्लानि हुई कि पुत्र होने का समय बीत चला । तब वे तुरन्त गुरु वशिष्ठ के घर गये और दण्डवत करके बहुत स्तुति की । पुनः अपना सारा दुख-सुख गुरु को कह सुनाया । इस पर वशिष्ठ ने कई प्रकार से समझाया कि धैर्य धरो, तुम्हारे चार पुत्र होंगे, जो तीनो लोको मे प्रसिद्ध और भक्तो के भय हरने वाले होंगे । इस प्रकार सुखपूर्वक कुछ दिन कटे और वह अवसर आया जिसमें प्रभु प्रकट होते है । नवमी तिथि, पवित्र चैत का महीना, शुक्ल-पक्ष, भगवान का प्यारा अविजित-नक्षत्र (इस नक्षत्र में तीन तारे सिंघाड़े के आकार में मिले होते हैं । यह मुहूर्त ठीक मध्याह्न मे आता है ।) दिन के मध्य (दोपहर) मे, जब न बहुत जाड़ा था और न धूप ही, अतः लोगों को विश्राम देने वाला पवित्र समय था । ठंढी, धीमी और सुगंधित हवा चल रही थी, देवता आनन्दित थे और सन्तों के मन मे उत्साह था । ब्राह्मणों, गायों, देवताओं और सन्तों के लिये (प्रभु ने) मनुष्य अवतार लिया । भगवान का तन माया के गुणो और इन्द्रियो से परे अपनी इच्छा से निर्माण किया हुआ है ।

शब्दार्थ सिसु-रुदन=बच्चों का रोना; संभ्रम=आतुरता से, उत्कंठापूर्वक; ब्रह्मानन्द=ब्रह्म को पा लेने की खुशी, जिसमे देह की सुधि तक नहीं रहती; पुलक=आनन्द।

भावार्थ बच्चे के रोने का परम प्रिय स्वर सुनकर सब रानियाँ बड़ी आतुरता से वहाँ चली आईं। दासियाँ प्रसन्न होकर जहाँ-तहाँ दौड़ पड़ीं, सभी नगरवासी आनन्द-मग्न होगये। राजा दशरथ पुत्र का जन्म कानों से सुनकर मानो ब्रह्मानन्द मे समा गये। मन में परम प्रेम है, शरीर पुलकित है, (आनन्द से अधीर मन को दर्शनों के लिये) धीरज बँधाते हुए वे उठना चाहते हैं। जिनका नाम सुनते ही कल्याण होता है, वे ही प्रभु मेरे घर आ गये हैं, इस प्रकार परमानन्दित होकर राजा ने (बाजे वालों को) बुलवाकर बाजा बजाने को कहा।

अलंकार 'मानहुँ ब्रह्मानन्द……' में उत्प्रेक्षा है।

शब्दार्थ हँकारा=बुलावा; नन्दीमुख श्राद्ध=वह श्राद्ध जो वृद्धि के लिये किया जाय। इसे ग्रहण करने को पितृगण नाँद की तरह मुख फैलाये रहते हैं, इससे भी नाँदीमुख कहा जाता है। वृद्धि श्राद्ध।

भावार्थ गुरु वशिष्ठ को बुलावा गया, वे ब्राह्मणों के साथ राजा के द्वार पर आये। जाकर (ऐसे) बालक को देखा जिसकी उपमा नहीं है, (जो अद्वितीय हैं) और जिसके गुणों का बखान नहीं किया जा सकता। (तब) राजा नें नन्दीमुख श्राद्ध करके जात कर्म संस्कार के सब विधान किये और ब्राह्मणों को सोना, गायें, वस्त्र और मणियाँ दीं।

विशेष 'नन्दीमुख श्राद्ध करि……' जीवों की सद्गति के लिये "दस कर्म शास्त्रों में कहे गये हैं गर्भाधान, सीम-

-ाक, जात कर्म, नामकरण, अन्न प्राशन, कर्णवेध, यज्ञोपवीत, विवाह और मृतक कर्म। इनमें विवाह तक के सभी कर्मों के आदि में नान्दीमुख श्राद्ध का अधिकार है। यह श्राद्ध मांगलिक है।

शब्दार्थ कैकयसुता = कैकेयी; सारद = सरस्वती; अहिराजा = शेषनाग; सीकर = बूँद का कण मात्र; सुपासी = सुखी; अखिल = सम्पूर्ण; रिपु = शत्रु।

भावार्थ कैकेयी और सुमित्रा इन दोनों ने भी सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। इस सुख, सम्पति, शुभ अवसर और समाज का वर्णन सरस्वती और शेष भी नहीं कर सकते। कुछ दिन इस प्रकार वीत गये; (सुख के कारण) दिन-रात जाते न जान पड़े। नाम-करण का अवसर (दिन) जानकर राजा ने ज्ञानी मुनि (वसिष्ठ जी) को बुला भेजा। उनकी पूजा करके राजा ने ऐसा कहा हे राजन! इनके नाम (ईश्वर होने के कारण) वहुत और अनुपम हैं, मैं अपनी वुद्धि के अनुसार कहूँगा। जो आनन्द के सागर और सुख की राशि हैं, जिसके कणमात्र से तीनो लोक सुखी होते हैं, उस सुखदायक का "राम" ऐसा नाम है, जो सम्पूर्ण लोकों को विश्राम देने वाला है। जो जगत् भर का पालन-पोषण करते हैं, उनका 'भरत' ऐसा नाम ही (उपयुक्त) होगा। जिनके स्मरण (ही) से शत्रु का नाश होता है, उनका नाम 'शत्रुघ्न' वेदों मे विदित है। जो सुलक्षणों के समूह राम के प्यारे और सारे जगत् के आधारभूत हैं, उनका गुरु वशिष्ठ ने 'लक्ष्मण' ऐसा श्रेष्ठ नाम रक्खा।

शब्दार्थ विपिन = जंगल; गाधि-तनय = विश्वामित्र; महि = पृथ्वी; मज्जन = स्नान।

भावार्थ महामुनि और ज्ञानी विश्वामित्र जी वन में शुभ आश्रम जानकर रहते थे। जहाँ मुनि जप, यज्ञ और योग करते थे (वे) मारीच और सुबाहु से अत्यन्त डरा करते थे। गाधि-पुत्र विश्वामित्र के मन में विशेष चिन्ता हुई कि बिना भगवान के, पापी निशाचर नहीं मरेंगे। तब मुनि-श्रेष्ठ ने विचार किया कि पृथ्वी का भार हरने वाले प्रभु (श्रीराम) ने अवतार लिया है। अनेक प्रकार से मनोरथ लिये, उन्हें जाने में देर न लगी। सरयू जल में स्नान करके वे राजा के द्वार पर गये।

शब्दार्थ लाउब=लगावो; बारा = देर; याचन=माँगना; अनुज=छोटे भाई; तनय=पुत्र।

भावार्थ जब राजा दशरथ ने मुनि का आना सुना, तब ब्राह्मण समाज को साथ लेकर मिलने गये। दण्डवत प्रणाम करके मुनि का सम्मान करते हुए, अपने आसन पर उन्हें ला बैठाया। तब राजा मन में प्रसन्न होकर बोले कि हे मुनि, ऐसी कृपा तो आपने कभी न की थी! किस कारण (इस समय) आपका आगमन हुआ? कहिये, उसको (पूर्ण) करने मे देर न करूँगा। हे राजन! मुझे राक्षसगण दुख देते हैं। इसलिये मैं तुमसे, माँगने आया हूँ। छोटे भाई (लक्ष्मण) के साथ रामचन्द्र को दीजिये। राक्षसों का वध होने से मैं सनाथ होऊँगा। (तब राजा दशरथ ने) आदरपूर्वक दोनों पुत्रों को बुलाकर हृदय से लगाया और बहुत प्रकार से सिखाया। हे नाथ! (उन्होंने कहा), ये दोनों ही पुत्र मेरे प्राण हैं। हे मुनि, आप ही इनके पिता हैं और कोई नहीं। राजा ने बहुत तरह से आशीष देकर, ऋषि (विश्वामित्र) को पुत्र सौंप दिये। तब प्रभु माता के महल में गये और (उनके) चरणों में माथा नवाकर चल दिये। पुरुषों में सिंहरूप, कृपा के समुद्र, धीर बुद्धि

निःशेष, जगत् के कारण और करण दोनो वीर मुनि के भय हरने के लिये हर्ष के साथ चले।

विशेष "पुरुस सिंह……" इस सोरठे में गोस्वामी जी ने सुन्दर ढंग से बालकाण्ड की सारी घटनाओं का वर्णन कर दिया है।

१ वे हर्षित होकर चले थे, इसीलिये उनका कार्य सफल हो सका।

२ वे सिंहरूप थे इसीलिये निशिचरों पर जंगल में विजय पा सके।

३ 'कृपा' विशेषण अहिल्या के उद्धार की ओर संकेत करता है।

४ मतिधीर थे अतः धनुष तोड़ सके और जगत् जननी सीता से विवाह किया।

शब्दार्थ निज पद=स्वर्गधाम, मोक्ष; झारी=समूह; मख=यज्ञ; कोही=क्रोधी; फर (शुद्ध रूप फल)=बाण का अग्रिम भाग; योजन=आठ मील; पावक सर=अग्नि बाण; कटक=सेना; गाधि-सूनु=विश्वामित्र; गा=गया।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ बिहाई=छोड़कर, फुलवाई (फुलवारी)=बगीचा; विलोके=देखे; पहिं=पास. मृदुवयन=कोमल वचन।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ=दुई=दो; वय=उम्र; गौर=गोरा; गिरा=वाणी; अनयन=नेत्रहीन; सुहाने=भले लगे; दरसलागि=देखने के लिए; लोचन=नेत्र; पुरातनि=प्राचीन।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ किंकिनि=(किंकिणि)=करधन; नूपुर=पैजनी; गुनि=विचारकर; मयन (मदन)=कामदेव; दुंदुभी=नगाड़ा; मनसा=इच्छा; चारु=सुन्दर; अचंचल=स्थिर, एकटक; निमि=एक राजा का नाम; (रामचन्द्र जी के पूर्वज); दृगंचल=पलक; शुचि=पवित्र; अनुहार=अनुकुल।

भावार्थ कंकण, किंकिणी और नूपुर के शब्द सुनकर राम हृदय मे विचार कर लक्ष्मण से कहते हैं हे लक्ष्मण! यह ध्वनि तो ऐसी हो रही है कि मानो कामदेव ने संसार को जीतने की इच्छा करके डंका बजाया है (अर्थात् अत्यन्त आकर्षक है।) ऐसा कहकर (वे फिर उसी ओर देखने लगे। (तब) सीताजी के मुख चंद्र पर रामचंद्र के नेत्र चकोर की भाँति लग गये। सुन्दर नेत्र ऐसे स्थिर (एकटक) हो गये कि मानों राजा निमि ने संकोचवश पलकों (पर से निवास) को छोड़ दिया। राम ने सीता जी की शोभा देख सुख का अनुभव किया। वे हृदय मे सराहते हैं; मुख से वचन नहीं निकलते। हृदय मे सीताजी की शोभा कहकर और अपनी दशा विचार कर प्रभु पवित्र मन से समयानुकूल वचन भाई लक्ष्मण से बोले।

विशेष १ 'कंकन, किंकिनि, नूपुर-धुनि इन तीनो भूषणो मे शब्द होता है, हाथ हिलाने पर कंकण, कटि हिलने पर किंकिणी और पैर उठाकर रखने पर नूपुरो का गम्भीर शब्द होता है।

२ 'सिय मुख……चकोरा' चकोर चद्रमा की ओर प्रेमवश एकटक देखता है। अन्यत्र उसके लिए कहा गया है "चुनगी चुगै अँगार की, चुगै कि चंद-मयूख"

३ निमिराजा इक्ष्वाकु की बारहवीं पीढ़ी में राजा निमि हुए। एक बार निमि ने सहस्र वार्षिक यज्ञ करने लिए वशिष्ठ

को वरण किया। पहले से ही इंद्र के पंचशत वार्षिक यज्ञ में वरण किये जा चुकने के कारण, वसिष्ठ ने इंद्र के यज्ञ की समाप्ति पर स्वीकार करने को कहा। अनुपस्थिति में अपने स्थान पर गौतम ऋषि का वरण जानकर उन्होंने निमि को देह-रहित होने का शाप दिया। इससे इनकी (निमि की) इच्छा के अनुसार उनका निवास वायुरूप से सब प्राणियों की पलकों पर है। अतः अपने कुल की कन्या से दृष्टि का सम्बन्ध जानकर हट गये।

अलंकार 'मनहुँ सकुचि निमि…' मे उत्प्रेक्षा।

भावार्थ हे तात! यह वही जनकजी की कन्या (सीता) है, जिसके लिए धनुष-यज्ञ हो रहा है। गौरी पूजने के लिए इसे सखियाँ ले आई हैं। (वही) फुलवारी को प्रकाशित करती हुई घूम रही है। (राम) छोटे भाई से वार्ता कर रहे हैं (पर) मन सीता के रूप में लुभाया हुआ है। वह मुख-कमल के छवि रूप मकरन्द (रस) को भौंरे की तरह पी रहा है।

अलकार रूपक और उपमा।

शब्दार्थ मन-चीता=मन हरने वाला; मृगसावक=हिरन का बच्चा; सित=श्वेत; श्रेनी (श्रेणी)=पंक्ति; लखाये= इशारे से दिखाया; निमेखे=पलक मारना; भोरी (भोली)= सुधि-हीन।

भावार्थ सीता जी चारों दिशाओं में चौकन्नी होकर देखती है कि मन को हरने वाले, राज किशोर (राम) कहाँ चले गये। बाल-मृग-नयनी सीता जी जहाँ देखती हैं, वहीं मानों श्वेत कमलों की पंक्ति बरस जाती है (उधर ही सखियों का समूह देखने लगता है,)। तब सखियों ने किशोर अवस्था

वाले सुहावने श्याम गौर कुमारों को लता की आड़ में दिखलाया। उनके ललचाये हुए नेत्र रूप को देख कर प्रसन्न हुईं (या उनके रूप को देख आँखें ललच गईं और प्रसन्न हुईं) मानों उन्हों ने अपनी निधि (खजाना) को पहचान लिया हो। राम की छवि देखकर नेत्र थक गये (स्थगित रह गये) और पलकों ने भी निमेष मारना छोड़ दिया अर्थात् टकटकी लग गई। अधिक स्नेह के कारण देह की सुधि नहीं रह गई, जैसे शरद ऋतु के चंद्रमा को चकोरी (मुग्ध हो) निहार रही हो। नेत्रों के मार्ग से श्री राम को हृदय में ला कर सयानी (चतुरा) सीता ने पलक रूपी किवाड़ लगा दिये। जब सखियों ने सीता को प्रेम के वशीभूत जाना, तब वे मन में बहुत सकुचीं, पर कुछ कह न सकती थीं। उसी समय दोनो भाई लताओं के कुञ्ज से प्रकट हो गये मानों दो निर्मल चन्द्र मेघ समूह को अलग (चीर) कर निकले हैं।

विशेष (१) शरद् चंद्र में चकोरी पूर्ण रूप से तृप्त हो जाती है।

(२) अन्यत्र "सियमुख ससि भये नयन चकोरा।" तथा यहाँ "सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।" कह कर परस्पर अनन्यता सूचित की गई है।

(३) चन्द्रमा में भी दोष (कलंक) है, किन्तु ये निर्दोष हैं।

अलंकार उत्प्रेक्षा।

शब्दार्थ केहरि कटि=सिंह की कमर; भानु=सूर्य; अपान (अपनापौ)=आत्म सुधि; सुषमा=परम शोभा।

भावार्थ सिंह की सी (पतली) कमर, पीताम्बर धारण किए हुए शोभा और शील के धाम, सूर्य कुल के भूषण, को देखकर सखियों का अपनपौ (आत्म सुधि) भूल गया। संतानंद (जनक के पुरोहित) के चरणों को प्रणाम करके प्रभु (राम) गुरु के पास जा बैठे। तब मुनि ने कहा हे तात! चलो राजा जनक ने बुला भेजा है।

शब्दार्थ काहि धौं = किसे; भाजन = पात्र, कुंजर मणि = गज मुक्ता; कलित = सुन्दर; कंठा = गले का हार; बृषभ = बैल ठवनि = अकड़, मुद्रा।

भावार्थ चलकर सीता जी का स्वयंबर देखिये। देखें ईश्वर किसे बड़ाई (सफलता) देते हैं। लक्ष्मण ने कहा, हे नाथ, यश का पात्र वही होगा, जिस पर आप की कृपा होगी। फिर कृपालु राम मुनि समूह के साथ धनुष-यज्ञ शाला देख ने चले। गज मुक्ताओं का सुन्दर कंठा (गले में) और हृदय पर तुलसी (के दल और मञ्जरी) की माला है। बैलों के से (ऊँचे, चौड़े एवं पुष्ट) कंधे, सिंह की सी अकड़ (ठवनि) और बल की राशि लम्बी भुजाएँ (आजानु बाहु) हैं।

शब्दार्थ तूणीर = तरकस; उप वीत = जनेऊ; रंग अवनि = रंग स्थल (स्वयं वर का स्थान)।

भावार्थ कमर मे तरकस हैं, उन्हे पीताम्बर में बाँध रक्खा है। (दाहिने) हाथ मे बाण और श्रेष्ठ बायें कंधे पर धनुष है। पीले यज्ञोपवीत सुहावने लगते हैं। नख से चोटी तक सब अंग सुन्दर है। उन पर महा छवि छाई हुई है। देखकर सब लोग सुखी हुए उनकी एकटकी बँध गई। आँखें हटाये से नहीं हटतीं। राजा जनक दोनों भाइयों को देखकर प्रसन्न हुए।

तब उन्होंने मुनि के चरण कमलों को जा पकड़ा। स्तुति करके अपनी कथा सुनाई, और सारा रंग-स्थल मुनि को दिखाया। सब मचों मे से एक मंच अधिक सुन्दर, उज्ज्वल और ऊँचा तथा चौड़ा था। राजा जनक जी ने मुनि के साथ इन दोनों भाइयों को उस पर बैठाया।

शब्दार्थ पटतरिय=उपमा (समता) तीय=(साधारण) स्त्री; कमनीया=सुन्दरी; गिरा=वाणी, सरस्वती; मुखर=मुखरा (खूब बोलने वाली) अर्ध=आधा; भवानी पार्वती; रति=कामदेव की स्त्री; अतनु=बिना शरीर के (अनंग), कामदेव; बारुनी=मदिरा, रमा=लक्ष्मी; पयोनिधि=समुद्र; रजु (रज्जु रस्सी; छवि=लावण्य, कांति; सिंगारु=श्रृङ्गार; मारु (मार)=कामदेव; लच्छि=लक्ष्मी, समतल=समान।

भावार्थ रूप और गुणों की खान, जगन्माता श्री सीता जी की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता; सब उपमाएँ मुझे तुच्छ जची, क्योंकि वे प्राकृत स्त्रियों के अंग में अनुरागपूर्वक लगी हुई है। उन्हीं उपमाओं को देते हुए सीता जी का वर्णन करने से 'कुकवि' कहाकर कौन अपयश ले (सभी उपमाएँ जूठी हो चुकी है)? यदि सीता जी की समता मे (किसी) स्त्री की उपमा दी जाय तो जगत में ऐसी सुन्दरी स्त्री है कहाँ? सरस्वती बहुत बोलने वाली हैं, पार्वती आधे अंग (शिव की अर्धांगिनी होने के कारण) की है, और रति अपने पति को बिना शरीर के (अनंग) जानकर अत्यंत दुखित हैं, विष और मदिरा जिनके प्यारे भाई हैं, उन लक्ष्मीजी के समान जानकी जी को कैसे कहें? जो छवि रूपी अमृत का समुद्र होवे और कच्छप भगवान वे ही रहे, पर वे परम-सुन्दर हो। शोभा रस्सी हो, श्रृंगार ही मंद्राचल हो, और कामदेव अपने ही कर कमलों

से मथे। इस तरह जब सुन्दरता और सुख की जड़ लक्ष्मी प्रकट हो तो भी कवि सकोच के साथ ही कहेंगे कि वह श्री सीता जी के समान हैं।

शब्दार्थ भंजउ=तोड़ो; परितापा=दुःख; उदयगिरि=उदयाचल; बाल पतंग=बाल रवि (प्रातः कालीन सूर्य) भृङ्ग=भौंरा।

भावार्थ - चौपाई सरल है।

दोहा मंच रूपी उदयाचल पर रघुवर रूपी बाल रवि उदित हुए। सब संत रूपी कमल प्रफुल्लित हुए और (सब के) नेत्र रूपी भौंरे प्रसन्न हुए।

टीप यह रूपकालंकार का श्रेष्ठतम उदाहरण है।

शब्दार्थ कुलिश=वज्र; गात=शरीर; सब (से)=सो; लोल=चंचल; मनसिज=काम; मीन=मछली; जुग (युग)=दो; विधुमंडल=चंद्रमण्डल; डोल=हिंडोला।

भावार्थ चौपाई सरल है।

दोहा प्रभु को देख कर फिर (सीता) पृथ्वी की ओर देखती हैं। इसमे उनके चंचल नेत्र इस तरह शोभा देते हैं मानों काम की दो मछलियाँ चंद्रमंडल पर हिंडोले में झूल रहीं हों।

अलंकार- उत्प्रेक्षा।

शब्दार्थ -अलिनि=भ्रमरी; लाज निशा=लज्जा रूपिनी रात्रि व्याल=सर्प; तक्यो=देखे; लाघव=अत्यंत शीघ्रता; दामिनि=बिजली; लयऊ=उठा लिया; गाढ़े=दृढ़ रीति से (कान तक); रव=शब्द; बाजि=घोड़े (सूर्य के); दिग्गज=दिशाओं के हाथी; महि=पृथ्वी; अहि=शेषनाग; कोल=वाराह; कूरम=कच्छप;

कलमले=कुल बुला उठे; कोदण्ड=धनुष; चाप=धनुष; कोदंड=धनुष; खण्डेउ=भंग किया।

भावार्थ (श्री सीता जी के) मुख-कमल ने वाणी रूपी भ्रमरी को रोक लिया। लज्जा रूपी रात को देखकर वह प्रकट नहीं होती (अर्थात् सीता जी लज्जायुक्त होकर राम को देखने के लिये सिर न उठा सकीं और कुछ बोल ही सकीं)। आँखों का जल आँखो के ही कोने मे रह गया जैसे, बड़े कंजूस का सोना (घर के कोने मे ही गड़ा रह जाता है)।

वे अति व्याकुल होकर सकुच गईं और धैर्य धरकर हृदय में विश्वास लाईं। जो शरीर (कर्म) मन और वचन से मेरे प्राण सच्चे हैं, और श्री रघुनाथ जी के चरण-कमलों में मेरा चित्त रंगा हुआ है तो सब के हृदय मे बसने वाले भगवान मुझे रघुकुल मे श्रेष्ठ श्री राम जी की दासी करेंगे। प्रभु की ओर देखकर प्रेम का प्रण दृढ़ किया, कृपानिधान राम ने सब कुछ जान लिया। सीता जी को देखकर श्रीराम ने धनुष को कैसे ताका (देखा)? जैसे छोटे साँप को गरुड़ देखता है। श्रीराम ने मन ही मन गुरु जी को प्रणाम किया और अत्यन्त शीघ्रता से धनुष को उठा लिया। जब (उठा) लिया तब वह बिजली की तरह चमका। फिर धनुष आकाश-मंडल के समान हो गया। उसे लेते (उठाते), चढ़ाते (प्रत्यञ्चा चढ़ाते) और दृढ़ रीति से कान तक प्रत्यञ्चा (डोर) को खींचते कोई लक्ष्य नहीं कर पाया (कि कब एवं कैसे उठाया, चढ़ाया और जोर से खींचा) सब ने देखा कि खींचे खड़े हैं। उसी क्षण के भीतर राम ने धनुष को बीच से तोड़ दिया। संसार मे (धनुष टूटने का) घोर, कठोर शब्द भर गया।

घोर (भयानक) और कठोर (कड़ा) शब्द लोकों (भुवन) में भर गया (गूञ्ज उठा)। सूर्य के घोड़े अपना मार्ग छोड़कर चलने लगे। दिग्गज चिंघाड़ने लगे। शेष, वाराह और कच्छप कुलबुला उठे; देवता, दैत्य और मुनि सब कान में हाथ दिए व्याकुल होकर विचार रहे हैं (जान पड़ता है) कि राम ने धनुष तोड़ा है। गोस्वामी जी कहते हैं कि (ऐसा समझ कर) सब के सब श्रीराम की 'जय-जय' का उच्चारण करते हैं। शिव जी का धनुष जहाज है, श्रीराम की भुजाओं का बल समुद्र (रूप) है। वह सारा समाज (धनुष रूपी जहाज के टूटते ही) डूब गया। जो पहले ही मोह के वश उस पर जा चढ़ा था।

देवताओं ने नगाड़े बजाये और प्रभु पर फूल बरसने लगे। नगर के सब स्त्री-पुरुष प्रसन्न हुए और उनका मोहमय शूल (दुःख) मिट गया।

अलंकार उपमा, रूपक और अतिशयोक्ति।

शब्दार्थ कृतकृत्य=कृतार्थ; नरनाथ=राजा।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ गिरा=सरस्वती; अहि नाऊ=शेषनाग; अंबुधि=समुद्र; राय=राजा; सुभाय = स्वभावानुसार; मुकुर=दर्पण; श्रवण=कान; सित=सफेद; केसा=केश; जरठपन= बुढ़ापा; उपदेशा=प्रतीत हो रहा है; लाहु=लाभ; ऋधि-सिधि (शुद्ध ऋद्धि-सिद्धि)=समृद्धि और सफलता; ये दोनों गणेश जी की दासियाँ भी मानी जाती हैं।

भावार्थ "ऋधि-सिधि …… कहँ आई" ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्ति रूपी सुहावनी नदियाँ उमड़ कर अवध रूपी समुद्र में आईं (अर्थात् सारी समृद्धि अवध में समा गई)।

शेष सरल है।

अलंकार रूपक और उत्प्रेक्षा।

शब्दार्थ भुवाल (भूपाल) = राजा; करियहि = करिये; अछत = जीते हो, वेगि = शीघ्र।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ मन्दिर = राजमहल; सुमंत्र = दशरथ के महामंत्री का नाम; जीव = राजा; सचिव = मंत्री; आजू = आज; अभिषेक = विधिपूर्वक मंत्र पढ़कर जल छिड़क राज्याधिकार प्रदान करना; आयसु = आज्ञा।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ कुबरि = मंथरा (कैकई की दासी), पाहन = पत्थर, टेई = धार करना; हरित = हरा, तृण = घास; माहुर = जहर; घोरी = मिलाया; चेरी = दासी; थाथी = धरोहर; सवति = सौत; हुलासू = आनन्दपूर्वक; अकाज = अनुचित कार्य, कुघातु = बुरी घात लगाकर; पातकिनि = पापिनी ; कोप-गृह = कोप-भवन ; जिसमे रानियाँ मान करने पर जा पड़ती है; यह शयनागार के पास रहता है; इसकी सजावट भी कोप (क्रोध) करने योग्य रहती है। कबुली = क़बूली हुई; मनौती = मानी हुई बलि।

भावार्थ दुष्ट हृदया कुबड़ी मंथरा कैकेयी को मनौती मानी हुई (बलि-पशु) करके, कपट रूपी छुरी को हृदय रूपी पत्थर पर तेज करती है (अर्थात् कैकेयी के हृदय में कपट-बीज बोना चाहती है)। पर रानी अपने निकट के (भावी) दुःख को इस तरह नहीं देखती है कि जैसे बलि-पशु हरी घास चरता है (पर यह नहीं जानता कि क्षण भर में बलिदान रूप में उसका वध होगा) उसकी बातें सुनने मे तो कोमल हैं, पर वे कठोर परिणाम वाली हैं, मानो वह शहद (मधु) में विष को घोलकर

इसे (कैकेयी को) दे रही है। दासी मथरा कहती है कि हे स्वामिनी ! आपको स्मरण है कि नहीं जो आपने एक कथा मुझसे कही थी। अपने धरोहर वाले दो वरदान राजा से आज माँग लो और अपनी छाती ठंडी कर लो (अपने हृदय की प्यास बुझा लो)। पुत्र को राज्य और राम को वनवास दो तथा सौतों का सब आनंदोल्लास (स्वयं) ले लो। राजा जब राम की सौगंध लें तब वर माँगना, जिससे वचन न टले। आज की रात बीत जाने से कार्य बिगड़ जावेगा, मेरी बातों को प्राणों से भी प्रिय समझना (न भूलना)। उस पापिनी मंथरा ने कैकेयी पर बुरी घात लगाकर उससे कहा कि कोप-भवन में जाओ, एकाएक (बिना राम-शपथ के) राजा पर विश्वास न कर लेना (अन्यथा वे इनकार कर देंगे) संध्या समय राजा दशरथ आनन्दपूर्वक कैकेयी के महल में (इस प्रकार) गये, मानो निष्ठुरता के समीप साक्षात् स्नेह देह धर कर गया।

शब्दार्थ अगहुँड़=अगाड़ी, आगे; पट=वस्त्र; मोट=मोटा; रिसानी=क्रोधित हैं; जमु=यम वरोरु=श्रेष्ठ जंघों वाली, सुन्दरी; भामिनी=पत्नी।

भावार्थ (रानी का) का कोप भवन (में होना) सुनकर राजा सकुच (सूख) गये डर के मारे उनके पैर आगे नहीं पड़ते। डरते हुए राजा अपनी प्रिया कैकेयी के पास गये, उसकी दशा देखकर उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। (वे देखते हैं कि रानी) रानी भूमि पर लेटी हुई है, मोटा पुराना वस्त्र पहिने है, शरीर पर के सब प्रकार के भूषण उतारकर डाल (बिखेर) दिये हैं। राजा उसके पास जाकर कोमल वाणी में बोले कि "हे प्राण प्रिये, किस लिए कुपित हो। तेरा अहित किसने किया है ? किसके दो सिर हैं (एक सिर वाला तो तुम्हारा अहित कर नहीं

सकता, क्योंकि वह जानता है कि मैं उसका सिर तुरन्त काट डालूँगा। हाँ, दो शिर हों तो चाहे वह उतनी देर बच जाय, जब तक मैं उसका दूसरा शिर भी न काट लूँ।) जिन्हे यमराज लेना चाहते हैं। कहो, किस दरिद्र को राजा बना दूँ? कहो, किस राजा को देश से बाहर निकाल दूँ? हे वरोरू (सुन्दरी)! तुम मेरा स्वभाव जानत हो कि मेरा मन तुम्हारे मुख रूपी चंद्रमा का चकोर है। हे प्रिये! प्राण, पुत्र, परिजन, प्रजा और जो कुछ मेरे हैं वे सब तेरे वश मे हैं। जो मैं कुछ कपट कहता होऊँ तो, हे भामिनि! मुझे राम की सौ बार शपथ है। हँसकर (प्रसन्नता से) मन को भाने वाली बात (वरदान) माँग लो और सुन्दर शरीर पर भूषण धारण करो। अपने हृदय मे विचार कर अवसर कुअवसर तो देखो। हे प्रिये! कुवेश को शीघ्र त्याग करो। हे भामिनि! तेरी इच्छा के अनुसार नगर में घर घर आनन्द और बधाई के बाजे बज रहे हैं। राम को कल ही युवराज-पद दे रहा हूँ। हे सुलोचने! (अतः इस आनन्द अवसर पर) मंगल साज सजो। (तब) झूठा स्नेह बढ़ा, नेत्र और मुख मोड़कर (मटका कर) हँसती हुई वह बोली, "(हे प्रिय!) आप 'माँगो-माँगो' तो कहा ही करते है; पर कभी देते लेते नहीं। आपने दो वर मुझे दिये थे उनके भी पाने में मुझे सन्देह है।"

शब्दार्थ कोहाब=रूठना; पातक=पाप; गुञ्जा=घुंघची; दिढाई=पक्की कराके; कुविहंग=बाज पक्षी; कुलह (फा० कुलाह)=बाज की आँख का ढक्कन, टोपी; ससिकर=चन्द्र-किरण, कोकू (कोक)=चकवा; सचान=बाज; लावा=बटेर।

भावार्थ सरल है।

विशेष (१) 'कुमत कुविहंग कुलह जनु खोली' मन चाहा संयोग देख प्रसन्न होकर बोली, इसी पर उत्प्रेक्षा है कि वह हँसकर बोली, ओंठ खुले, मानो हिंसा के लिए बाज की कुलही खुली।

(२) 'ससिकर छुवत बिकल जिमि कोकू' राजा के हृदय में कोमल वचन सुनकर शोक हुआ, इस पर उत्प्रेक्षा है कि वे ऐसे व्याकुल हुए मानो चन्द्रकिरण के स्पर्श से चकवा व्याकुल हो गया हो।

रात में चकवा-चकवी एक साथ नहीं रह पाते, यह उनका प्राकृतिक नियम है; अतः चन्द्रकिरण की शीतलता भी उनके लिए दाहक है। देखिए कबीर कहते हैं

"साँझ पड़ी दिन आँथन्यो, चकवी दीन्ही रोय।
चल चकवा वा देश में, रैन कदै ना होय॥"

(३) "कवने अवसर का भयउ जतिहि अविद्या नास।" किस अवसर पर क्या हो गया, मंगल के समय में अमंगल हुआ, राम-तिलक के समय उनको वनवास हुआ, परम लाभ के समय परम हानि हुई। (वे लज्जित है कि) स्त्री पर विश्वास करने से मैं नष्ट हो गया, (गयउँ = कहीं का न रहा) जैसे योग-सिद्धि के समय यति (तपस्वी) को अविद्या नष्ट कर देती है।

शब्दार्थ विलपत = विलाप करते; भिनुसारा = सबेरा; सचिव = मंत्री।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ रजायसु = आज्ञा; राउर = राजाओं के महल का अन्तःपुर; अशुभ भरी शुभ छूछी = अशुभ से भरी हुई और शुभ से रहित (अर्थात् कैकेयी)।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ आनहु=लाओ; बिगि=शीघ्र; राव=राजा; लखी=देख लिया, समझ गये, भाँप गये; निरखि=देखकर; रजाई=आज्ञा, कुभाँति=अशुभ रीति से (राज्याभिषेक के दिन विना किसी सज्जित वेष-भूषा के पैदल ही); नरपति=राजा (दशरथ), कुसाजु=अस्त व्यस्त।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ प्रथम दीख दुख सुना न काऊ=पहले पहल दुःख देखा जो कभी सुना भी न था; समउ=समय; सकहु=(यदि) कर सकते हो; धरहु सिर=शिरोधार्य करो, स्वीकार करो।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ प्रसंग=ब्योरा; भानुकुल-भानु=सूर्य वंश के सूर्य (राम), तनय=पुत्र, तोषनिहारा=संतुष्ट करने वाला; विशेषि=विशेष रूप से, बहुरि=फिर, ऊपर से।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ विधि=विधाता; सन्मुख=अनुकूल; लागि=के लिये; गोसाईं=गोस्वामी, यह प्रभु, सरकार, 'आप' आदि की तरह आदरसूचक सम्बोधन है; परिहरिय=छोड़ दें।

विशेष 'मंगल समय' माता-पिता के आज्ञा-पालन के लिये यात्रा है। अतः, मेरे मंगल का समय है। आपका सत्य धर्म रहेगा और कैकयी से उऋण होंगे। अतः आपके लिये भी मंगल का समय है। कैकयी भी अभीष्ट पा रही है, अतः उसके लिये भी।

शब्दार्थ जगती=पृथ्वी; तासू=उसका; चारि पदारथ=अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष; करतल=हथेली; पगु लागी=

चरणों में लगकर, प्रणाम करके; उतरू=उत्तर; व्यापि=फैल गई; सुतीछी=बहुत तीक्ष्ण; बीछी=बिच्छू; दवारी=दावाग्नि, वन की आग।

भावार्थ 'नगर व्यापि गई बात सुतीछी……बेलि बिटप जिमि देखि दवारी' यह बड़ी ही तीक्ष्ण बात (हृदय बेधक समाचार) नगर मे (इस प्रकार) फैल गई मानो (बिच्छू का डंक) स्पर्श होते ही सारे शरीर मे बिच्छू (अर्थात् उसके विष की पीड़ा) चढ़ गई। सुनकर सब स्त्री-पुरुष व्याकुल होकर मुरझा जाते हैं।

अलंकार उत्प्रेक्षा।

शब्दार्थ मोचति=बहा रही हैं; बारी=जल, (यहाँ) आँसू; भूपाल मणि=राजाओं में शिरोमणि; कैरव=कुमुद; बिधु=चंद्रमा।

भावार्थ सास (कौशल्या) ने कोमल वाणी से आशीश दिया, (सीता जी को) देखकर वे घबड़ा गईं (क्योंकि चेष्टा से एवं पूर्व वृत्ति से जान गईं कि ये अवश्य साथ जायेंगीं, तो वे वन के क्लेश कैसे सहेंगी।) (सीता जी के) सुन्दर नेत्रो से जल (आँसू) बह रहा है, यह देखकर श्रीराम की माता बोलीं। "हे तात! सुनो, सीता जी अत्यन्त सुकुमारी हैं, सास-ससुर और कुटुम्बी सभी को प्यारी हैं। उनके पिता जनक जी राजाओं मे शिरोमणि हैं, ससुर सुरिकुल के सूर्य (चक्रवर्ती राजा दशरथ हैं) और पति सूर्य कुल रूपी कुमुद वन को (प्रफुल्लित करने के लिये) चन्द्रमा और गुण एवं रूप के निधान हैं।"

अलंकार रूपक।

शब्दार्थ काह=क्या; सिखावन=शिक्षा; गुनहू=विचारो; नीक=भलाई; सिखवनु=शिक्षा; बामा=भामिनी; कानन=वन; घाम=धूप; वारि=वर्षा; बयारी=हवा; बारा=देर; बलकल=वृक्षों की छाल; बसन=वस्त्र; असन=भोजन; ते कि सदा सब दिन मिलहिं=वे भी क्या सब दिन मिलते हैं ? (नहीं)

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ चन्दवदनि=चन्द्रमुखी; ललित=सुन्दर; आव=सूझता; वैदेही=सीता; अवनि कुमारी=पृथ्वी की पुत्री (सीता जी). पागी=पगी हुई; करुना यतन=दया निधान।

भावार्थ सरल है।

विशेष "प्राणनाथ करुना यतन…… ………" आप प्राणनाथ हैं। मेरे प्राणों के सुखदाता हैं, अतः प्राणों की रक्षा कीजिये। आपके वियोग मे मेरे प्राण न रहेंगे। करुणा यतन हैं इसलिये करुणा करके साथ ले चलें, वियोग की निष्ठुर बात न कहें। सुन्दर है, अतः साथ रखकर दर्शनो का आनन्द देते रहें। सुखद और सुजान हैं इसलिये मेरे हृदय का भाव जानकर कि आपके विना स्वर्ग भी मुझे नरक के समान है। अतएव मुझे अपने साथ रखकर सुख दें।

अलंकार "रघुकुल कुमुद विधु" में रूपक है।

शब्दार्थ हारी=थकावट; पखारि=धोकर; बायु=हवा (पखा झलना), परिहरि=छोड़कर, विषाद=दुःख; समाजू=तैयारी; नरनाहू=राजा (दशरथ); दारुण=कठिन; दाहू=पीड़ा· बिसमय=दुःख; कत=क्यों; अपवादू=अपवाद, अपयश; राय=राजा; भाजन=वर्तन (कमंडलु,); भीर=दुख में; नसाऊ=नष्ट हो जाना; अचेत=मूर्छित; बनिता=स्त्री; बंदि=वन्दना करके।

भावार्थ "हठि राखे नहि राखहिं प्राणा" हठ करके इनको घर पर रखने से ये प्राण त्याग देंगी।

"तात किये .... होइ प्रमादू": हे तात! प्रिय के विषय मे प्रेम करने से अन्तःकरण की दुर्बलता प्रकट होगी, जिससे जगत में अपकीर्ति होगी।

"नृपहि प्राण प्रिय तुम्ह रघुबीरा . .
तुमहि जान बन कहिहिं न काहू।"

[कैकेयी मुनियों के वस्त्र (वलकल, माला, मेखला) लाकर कहती हैं कि] हे रघुवीर! तुम राजा को प्राणों के समान प्रिय हो। इसलिये भीरु, शील और स्नेह न छोड़ेंगे। चाहे पुण्य सुयश और परलोक नष्ट हो जाँय, पर वे कभी भी तुम्हें वन जाने को नहीं कहेंगे।

शब्दार्थ शृङ्गवेरपुर = यह स्थान जिला इलाहाबाद में है। आजकल इसे 'सिंगरौर घाट' कहा जाता है। देवसरि = गंगा; लोचनलाहु = नेत्र लाभ. विधि = विधाता; मगमाहीं = रास्ते में; नाग-सुर नगर = नागलोक और देवलोक; सिहाहीं = ललचाकर प्रशंसा करते. अमरावति = इन्द्रपुरी; घनस्याम = राम, अवगाहहिं = स्नान करते· कलपतरु = कल्प वृक्ष; पदुम (पद्म) = कमल; पराग = पुष्परज, विबुध = देवता: घन = मेघ।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ निकसहिं जाई = जा निकलते हैं: बिसारी = भूलकर. चितवहिं = देखते हैं; चितमन मति लाई = मन, बुद्धि और चित्त लगाकर; दिया = दीपक : तिय = स्त्री, पाये = चरण : सुभाये = सुन्दर (या स्वभाव ही से); बिलगु = बुरा; दुति = कान्ति, मरकत = एक मणि विशेष, मनोज = कामदेव; सुमुखि =

सुन्दरी ; धरनी = पृथ्वी ; बरबरनी = श्रेष्ठ वर्ण वाली ; पिक बयनी = कोकिल कंठी ; सुभग = सुन्दर ; खंजन = एक पक्षी, जिसकी आँख से सुन्दर आँखों की उपमा दी जाती है; सयननि = संकेतों से; ग्राम वधूटी = ग्राम-वासिनी स्त्रियाँ; रकन्ह = दरिद्रों; राय रासि = राजा का कोश।

भावार्थ श्री सीता और श्री लक्ष्मण के साथ श्रीराम जब गाँव के पास से निकलते है, तब इनका आगमन सुनकर बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष घर और वर के (सब) कार्य भूलकर चल पड़ते हैं। राम, लक्ष्मण और सीता के रूप को देखकर, नेत्र को सफल कर वे (ग्रामवासी) सुखी होते हैं। प्रेम के प्यासे स्त्री-पुरुष (इनकी सुन्दरता देखकर) इस तरह स्तब्ध हो गये हैं, जैसे हरिणी और हरिण दीपक देखकर (ठिठक जाते है)। गाँव की स्त्रियाँ सीता जी के पास जाती है, (पर) अत्यन्त स्नेह के कारण पूछते हुए सकुचाती है। बार-बार सब उनके चरण छूती है और सहज स्वभाव ही से कोमल वचन कहती है। हे राजकुमारी! हम कुछ विनय करना चाहती हैं पर स्त्री-स्वभाव से कुछ पूछते हुए डरती हैं (या स्त्री स्वभाव से कुछ पूछने की लालसा है, किन्तु डरती हैं)। हे स्वामिनी! हमारी ढिठाई को क्षमा कीजिये। हमको देहातिनी (गँवारिन) जानकर बुरा न मानियेगा। हे सुमुखि! कहो, ये दोनो स्वाभाविक ही सुन्दर राजकुमार, जिनसे मरकत मणि और सोने ने कान्ति पाई है (अर्थात् जिनकी रंचभर कांति पाकर ही वे कांतिमान् हो गये है), (सौन्दर्य मे) करोड़ो कामदेव को लज्जित करने वाले, तुम्हारे कौन हैं? उनकी स्नेह से भरी हुई सुन्दर वाणी सुनकर सीता जी सकुच गईं और मन में मुसकाईं। उनको देखकर (लज्जावश) पृथ्वी की ओर देखती है। श्रेष्ठ सुन्दरी (बरबरनी)

सीता जी दोनों के संकोच से दब रही हैं। मृग के बच्चे के-से नेत्रों वाली और कोकिला की-सी वाणी वाली सीता संकोच के साथ प्रेम सहित मधुर वचन बोलीं। जिनका सीधा स्वभाव और सुन्दर गौर शरीर है, (उनका) लक्ष्मण नाम है, वे मेरे छोटे देवर हैं। फिर सीता जी ने अपना मुख-चंद्र आँचल से ढाँक, पति की ओर देखकर और भौंहे टेढ़ी करके, सुन्दर खंजन पक्षी के-से सुन्दर नेत्रों को तिरछे करके सकेत द्वारा उन स्त्रियों से राम को अपना पति बतलाया। (उस अवसर पर) सब ग्रामवासिनी ऐसी प्रसन्न हुईं, मानों दरिद्रों ने राज कोश लूटा हो। अत्यन्त प्रेम से सीता जी के चरणों पर पड़कर अनेक प्रकार से शुभ वचन (आशीष) देती हैं कि तुम सौभाग्यवती होवो, जब तक पृथ्वी शेषनाग के सिर पर रहे (अर्थात् जब तक सृष्टि रहे)। तब लक्ष्मण और सीता के साथ राम ने गमन किया। लोग साथ चलने लगे, अतः सबको प्रिय वचन कहकर लौटाया, पर उनके मन को अपने साथ लगा लिया (अर्थात् उनका मन राम मे ही अनुरक्त हो गया)।

विशेष 'दुहुँ सकोच' ग्राम वासिनियों और पृथ्वी इन्हीं दो का सकोच है। पति के समीप पति ही की वार्त्ता में संकोच होता ही है; पृथ्वी माता हैं, क्योंकि आप 'भूमिपुत्री' हैं, अतः माँ के सम्मुख पति सम्बन्धी बात कैसे करें ? वैसे स्वभावतः भी लाज की बात पर शर्म से निगाह नीची हो जाती है।

शब्दार्थ दसानन=रावण; कपट मृग=बनावटी हरिण (छद्ममृग); कनक-देह=स्वर्ण शरीर; मणि रचित=मणि मंडित; वेखा=वेश; सत्यसंध=सत्य प्रतिज्ञ (भगवान्); कटि=कमर; परिकर=कमर का बन्धन; कटि परिकर बाँधा=कमर

कस कर; चाप=धनुष, सौंधा=साधा, चढ़ाया; केरि=की;
भाजी=भागा; पराई=दौड़ता; दुरत=छिपता; भूरी—बहुत;
खल=दुष्ट; बधि=मारकर; तूनीर=तर्कश; आरत गिरा=
दुःखपूर्ण वाणी; सन=से; भृकुटि-विलास=भ्रूकुञ्चन (भौं
मोड़ना); लय=नाश; राहू=राहु; सून (शून्य)=सूना,
एकान्त; दसकंधर=रावण; जती=साधु; नाईं=समान;
गाढ़ा=विशेष; रहु=रह, ठाढ़ा=खड़ा; हरि वधुहिं=सिंह की
स्त्री को, सस=खरगोश; निसिचर नाहा=राक्षस राज (रावण);
रिसाना=क्रोधित हुआ; गगन पथ=आकाश मार्ग।

भावार्थ 'भृकुटि विलास सृष्टि लय होई ... ... चले जहाँ रावन ससि राहू' जिसकी भौंहो के इशारे मात्र से संसार भर का नाश हो जाता है, क्या उसे स्वप्न मे भी संकट पड़ सकता है? (अर्थात् कदापि नहीं।) जब सीता जी ने मर्म वचन (यह कि पति के दुःख मे भी तुम्हें हर्ष हो रहा है, या दुःख-पूर्ण वचन) कहा, तब भगवान की ही प्रेरणा से (जिनके इशारे पर सब कुछ हो रहा है) लक्ष्मण का मन डाँवाँडोल हो गया। वन और दिशा के सब देवताओ एवं पशु-पक्षी आदि सब प्राणियो को सीता जी की रक्षा का भार सौंप कर लक्ष्मण वहाँ चले जहाँ रावण रूपी चन्द्रमा को ग्रसने वाले राहु रूप श्रीराम थे।

विशेष १ चंद्रमा भी रावण की तरह 'निशिचर' और 'कुल कलंक' है।

२ चन्द्रमा गुरु-तिय गामी है और रावण भी जगज्जननी का हरने वाला है।

३ राहु का अपराध पहले चन्द्रमा ने किया था (समुद्र

मंथन के समय), वैसे ही राम के प्रति रावण भी अपराधी है। शेष भावार्थ सरल है।

अलंकार रूपक।

शब्दार्थ बाहिज=ऊपरी (दिखावा मात्र के लिये); परिहरेउ=छोड़दिया; पेली=टालकर; निकर=झुण्ड; मम मन=मेरे मन में ऐसा जान पड़ता है; खोरी=दोष; प्राकृत=साधारण मनुष्य, केहरी=सिंह; इव=समान, पपा=पंपा सर; वारी=पानी, पुरइनि=कमल-पत्र; मर्म=भेद; मायाछन्न=माया से ढँका हुआ; सुख संजुत=सुख सहित।

भावार्थ 'संत-हृदय जस निर्मल वारी … दिन सुख-संजुत जाहिं।' संत के हृदय के समान उसका (पंपासर का) जल निर्मल है; उसमें मन को मुग्ध करने वाले चार घाट बँधे हैं। अनेक प्रकार के पशु-पक्षी जहाँ जल पी रहे हैं, मानो दाता के घर भिक्षुकों की भीड़ लगी हो। घने कमल-पत्रों की आड़ में शीघ्र जल का पता (उसी प्रकार) नहीं चलता, जैसे माया से ढँका रहने पर निर्गुण ब्रह्म नहीं देख पड़ता (अनुभव नहीं होता)। सब मछलियाँ अत्यन्त गहरे जल में एक-सी सुखी रहती हैं, जैसे धर्मात्माओं के दिन सुख सहित बीतते हैं।

विशेष तालाब के जल में काई और सेंवार रूपी दोष रहते हैं; वे इसमें उसी प्रकार नहीं हैं जैसे संतों के हृदय में विषय-वासना नहीं रहती। (शेष भावार्थ सरल है)

अलंकार उपमा और उत्प्रेक्षा।

शब्दार्थ बहुताई=सघनता, अधिकता; संकुल=परिपूर्ण; पंचानन=सिंह (पंच अर्थात् विस्तृत मुँह वाला, या चार (मुँह

के समान भयंकर) पंजो के साथ एक मुँह को लेकर भी सिंह को यह संज्ञा दी गई, 'शब्द सागर' से)। नियराया = निकट आ गया; बल सींवा = बल की सीमा; बटु = ब्राह्मण, सैन = इशारा; पठये = भेजे हुए; सैला = पर्वत; जाये = पुत्र; ऊना = कम, ओछा, तुच्छ; सूला (शूल) = दुःख; कपि पति = वानरराज, सुग्रीव; मइत्री = मित्रता; करीजे = कीजिये; मोसन = मुझसे।

भावार्थ फिर दोनो भाई सीता जी को ढूँढते हुए, वन की सघनता (शोभा-सम्पन्नता) देखते चले। लताओ और वृक्षो से परिपूर्ण वह वन सघन है, उसमे बहुत से पशु पक्षी, मृग, हाथी और सिंह हैं। श्री राम फिर आगे चले और ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँच गये। वहाँ (उस पर्वत पर) मंत्रियो के साथ सुग्रीव जी रहते थे। अतुलित बलशाली (बल की सीमा) श्री राम लक्ष्मण को आते हुए देख, वे अत्यंत डर कर बोले कि हे हनुमान! सुनो, ये दोनो पुरुष बल और रूप के निधान (समुद्र) है। ब्रह्मचारी का रूप धारण करके तुम जाकर देखो और उनके हृदय का भाव अपने मन से जानकर, संकेत द्वारा हमको समझाकर कह देना। यदि वे वालि के भेजे हुए हो और मन के मैले (दुष्टचित्त) हों, (या मन के मैले दुष्ट हृदय) वालि द्वारा भेजे गये होंगे, तो मैं इस पर्वत को छोड़ तुरंत भाग जाऊँगा। ब्राह्मण रूप धारण कर वानर (हनुमान) वहाँ गये और उन्हे प्रणाम कर इस प्रकार पूछने लगे। हे साँवले और गोरे शरीर वाले आप (दोनों) कौन हैं, जो वीर हैं और क्षत्रिय के रूप मे (अस्त्र शस्त्र धारण किये हुए) वन मे फिर रहे है? श्रीराम कहते है (कि) हम कौशल (अयोध्या) के राजा श्री दशरथ जी के पुत्र हैं और पिता का वचन मान कर वन में आये है। हम दोनो का

नाम राम-लक्ष्मण है, हम दोनो भाई हैं, साथ में सुन्दरी सुकुमारी स्त्री (थी)। यहाँ निशाचर ने वैदेही को हर लिया। हम उसे ही ढूँढ़ते फिरते हैं। हे विप्र! हमने अपना परिचय विस्तार पूर्वक बता दिया, अब (आप) अपनी कथा समझा कर कहिये। (तब) भगवान को पहचान हनुमान ने साष्टांग प्रणाम किया। शिव जी कहते हैं कि हे पार्वती! उस सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता। तब श्री राम ने हनुमान को उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सींचकर उन्हे शीतल किया। (और बोले) हे कपि! सुनो, तुम अपने हृदय मे अपने को ओछा (छोटा) न मानो, तुम मुझे लक्ष्मण से अधिक (दूने) प्रिय हो। स्वामी को अनुकूल देखकर हनुमान हृदय मे हर्षित हुए, तथा उनके सब दुःख (शूल) जाते रहे। (उन्होंने कहा कि) हे नाथ! इस पर्वत पर वानर-राज सुग्रीव रहते हैं, वे आप के दास हैं। उनसे आप मित्रता कीजिये और दीन जानकर उन्हे निर्भय कीजिये। वे सीता जी की खोज करावेंगे, जहाँ तहाँ करोड़ो वानरों को भेजेंगे। इस प्रकार सब बातें समझा कर दोनो व्यक्तियों को (हनुमान ने अपनी) पीठ पर चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने राम को देखा तब अपने जन्म को अत्यंत धन्य माना। वे चरणो मे सिर नवाकर उनसे आदर पूर्वक मिले। श्रीराम चन्द्र भी भाई के साथ उनसे गले लगाकर मिले। वानर सुग्रीव जी इस प्रकार मन मे विचार करते हैं कि हे विधाता! क्या ये मुझसे प्रीति करेंगे (क्या मुझे प्रेम करने योग्य समझेंगे?) तब हनुमान ने दोनों ओर की सब कथाये सुनाई और अग्नि को साक्षी देकर दोनो की प्रीति दृढ़ता से जोड़ दी (दृढ़ प्रतिज्ञा पूर्वक प्रीति हुई)।

शब्दार्थ निज धाम=स्वर्गधाम; पठावा=भेज दिया; अनुजहि=लक्ष्मण; निरमल ऋतु=शरदृतु; कैसेहु=किसी प्रकार; सुधि जानउँ=समाचार पाउँ; निमिष महँ=पल भर में; सायक=बाण; काली=कल; हतउँ=मारूँगा।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ पुर=पम्पापुर (सुग्रीव की राजधानी) कपीश=सुग्रीव; अकुलाना=व्याकुल होना; तारा सुग्रीव की पत्नी; मंदिर=महल; पखारि=धोकर; गहि भुज=हाथ पकड़ कर; विषय=वासना; खोह=कंदरा गुफा; लयलीन=तन्मय; तनु कर छोह=शरीर तक का मोह।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ अवधि=समय (एक माह की अवधि दी गई थी) सुधि=समाचार; निहोर=उपकार, अहसान; ओही=उसका (सुग्रीव का); लवण=खारा; दर्भ=कुशासन; दशाई=बिछाकर; सम्पाती=जटायु का भाई। नांघइ=लाँघे; योजन=४ कोस अथवा ८ मील; मति आगर=बुद्धिमान; जाकर=जिनका; कपराई=कायरता; भाखा=कहा; संशय=सदेह; ऋच्छपति=जामवंत; का=क्या; निधाना=खजाना; तुम्हँ पाही=तुमसे; पर्वताकारा=पर्वत के समान विशाल शरीर वाला; अपर=दूसरे; लीलहिं=खेल ही में; सहाय=सहायक; लंका मे स्थित त्रिकूट गिरि उपारि=उखाड़ कर; गगन चर=आकाश में उड़ने वाले पक्षी; मारुत सुत=पवनपुत्र, हनुमान; वारिधि=समुद्र; चंचरीक=भ्रमर; अधिकाई=बड़ाई; उत्तंग (उत्तुंग)=ऊँचा: कनक=सोना; कोट=(१) शहर-पनाह, प्राचीर (२) राजप्रासाद।

भावार्थ- यहाँ (समुद्र के तटपर) सब वानर मन में विचार करते हैं कि एक माह की अवधि (जो सुग्रीव ने दी थी) बीत गई, परन्तु (श्री राम का, सीता का पता लगाने का) कार्य कुछ भी नहीं हुआ। सब मिलकर आपस मे विचार करते है कि, हे भाई! बिना पता पाये हम क्या करेंगे? नेत्रों मे जल भर कर अंगद जी ने कहा कि (अब तो) दोनो प्रकार से हमारी मृत्यु हुई। यहाँ तो सीता जी की सुधि न मिली और वहाँ जाने पर कपिराज (सुग्रीव) मारेंगे। वे तो पिता (बालि) के वध होने पर ही मुझे मार डालते, किन्तु श्रीराम ने बचा लिया, इसमे उन (सुग्रीव) का कुछ उपकार (एहसान) नहीं है। (हे चतुर युवराज! हम सीता जी की सुधि लिए बिना नही लौटेंगे) ऐसा कहकर, सब वानर खारे (लवण) समुद्र के तट पर जा, कुशासन बिछा बैठ गये। (तब) जामवन्त ने अंगद का दुःख देखकर विशेष उपदेश की बातें कहीं। (राम चन्द्र भगवान के अवतार है) इस प्रकार अनेक प्रकार की कथाएँ (अंगद ने) कहीं, (जिसे) पर्वत की कंदरा मे (जटायु के बड़े भाई) सम्पाति ने सुन लिया। (सीता जी का पता बताकर) संपाति ने कहा कि जो चार सौ कोस का समुद्र लांघ सके और चतुर हो वही श्रीराम का कार्य करे। पापी भी, जिनका नाम स्मरण करते है वे अपार भवसागर से पार हो जाते हैं, उस प्रभु के दूत होकर तुमलोग कायरता छोड़कर, राम का स्मरण कर उपाय करो। (शिवजी कहते है कि) हे पार्वती! ऐसा कह कर जब गृध्र (सपाति) चला गया, तब सबके मन मे अत्यंत आश्चर्य हुआ। सब ने अपने-अपने पराक्रम का वर्णन किया, किन्तु समुद्र के पार जाने मे सन्देह ही रक्खा। (इस अवसर पर) ऋक्षराज जाम्बवन्त कहते है कि हे बली हनुमान! सुनो, तुम

क्यों चुप साधे हुए हो ? तुम पवन के पुत्र हो, (अतः) पवन के समान बली हो और बुद्धि, विवेक और विज्ञान के भांडार हो। हे तात ! संसार मे कौन सा काम (इतना) कठिन है जो तुमसे न हो सके ? श्री राम के काय के लिए ही तुम्हारा अवतार (हुआ) है, यह सुनते ही हनुमान पर्वत के समान विशाल शरीर वाले हो गय। उनका सोने का सा कान्तिवान शरीर (ऐसा प्रतीत होता है) मानो दूसरे पर्वतों के राजा (सुमेरु) हैं। वे बार-बार सिंह की तरह गरज कर बोले कि इस खारे समुद्र को तो मैं खेल-खेल ही मे लाँघ जाऊँगा। (अर्थात् मैं सब समुद्रों को लाँघ सकता हूँ, यह छोटा सा खारा-समुद्र तो खेल ही मे लाँघा जा सकता है।) (क्या) सहायकों (सेना-सुभट आदि) के साथ रावण को मारकर, त्रिकूट को उखाड़कर यहाँ ले आऊँ ? (सुरसा को अपने पराक्रम का परिचय दे जब हनुमान आगे बढ़े तब उन्हे एक राक्षसी मिली) वह समुद्र मे रहती थी और छल करके आकाश के पक्षियों को पकड़ लेती थी। जो जीव-जन्तु आकाश में उड़ते थे, उनकी परछाई जल मे देख वह सदैव उन पक्षियों को इस प्रकार खा जाया करती थी जैसे (मात्र) छाया पकड़ लेने से वे नहीं उड़ पाते थे। (अर्थात् उसके चंगुल से वे बच ही नहीं सकते थे।) (जब) उसी प्रकार का छल उसने हनुमान से किया, (तब) उन्होंने उसका कपट तुरंत पहिचान लिया, (क्योंकि सुग्रीव से उसका वर्णन पहले ही सुन चुके थे)। उसको मारकर पवन पुत्र वीर और मति धीर हनुमान समुद्र के पार पहुँच गये। वहाँ जाकर वन की शोभा देखी, जहाँ पुष्परस (मधु) के लोभ से भ्रमर गुञ्जन कर रहे थे। फल-फूलों से शोभित अनेक प्रकार के वृक्षों तथा पशु-पक्षी आदि के समूह को देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। आगे एक

विशाल पर्वत देख उस पर कूदकर निडर हो चढ़ गये। (शिव जी कहते हैं कि) हे पार्वती! यह कुछ वानर की बड़ाई नहीं, किन्तु यह भगवान रामचन्द्र का प्रताप है, जो काल को भी खा सकता है। उस पर्वत पर चढ़कर हनुमान ने लङ्कापुरी को देखा, कि एक बहुत बड़ा गढ़ बना हुआ है, जिसका, वर्णन नहीं किया जा सकता। (वह लङ्कापुरी) अत्यन्त उच्च है, उसके चारों ओर समुद्र हैं; सोने का राजमहल (या प्राचीर) अत्यत जगमगा रहा है। यह देखकर कि लङ्कापुरी के रक्षक बहुत हैं, हनुमान ने मन में विचार किया कि बहुत छोटा सा रूप धरूँ और रात्रि के समय नगर में प्रवेश करूँ।

विशेष (१) 'बीती अवधि……' सुग्रीव ने सीता को ढूँढने के लिए एक मास का समय दिया था। यथा,

जनक सुता कहँ खोजहु जाई, मास दिवस महँ आयहु भाई ॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाये, अवसि मरहिं सो ममकर आये ॥

(२) 'अति उत्तङ्ग …' क्योंकि लङ्का त्रिकूट पर्वत पर बसी है यथा, "गिरि त्रिकूट ऊपर बस लङ्का।"

(३) 'कनक बरन तन…' सुमेरु गिरि सोने का है, भारी है और पर्वतों का राजा है। वैसे ही हनुमान जी स्वर्ण वर्ण, शरीर से भारी और वानरों से राजा है।

शब्दार्थ मशक=मच्छड़, लघुरूप; मन्दिर=महल; सोइ रूप=वही छोटा रूप; जामा=प्रहर; कृश=दुर्बल; सेनी (श्रेणी) =समूह; पद नयन दिये=चरणों की ओर नेत्र किये।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ लुकाई=छिपा; कलप=कल्प; मुद्रिका=अंगूठी।

भावार्थ (सीता की दशा को देखकर हनुमान) वृक्षों के

पत्तों (की आड़) में छिप रहे और मन में विचार करने लगे कि हे भाई ! (अब) क्या करूँ ? सीता जी को अत्यंत विरह मे व्याकुल हनुमान को वह क्षण कल्प के समान बीता। तब हनुमान ने विचार कर रामचन्द्र की दी हुई अंगूठी नीचे गिरा दी; सीता जी ने उसे, मानो अशोक वृक्ष ने अग्नि (जिसकी वे खोज मे थीं) दी है, यह समझ कर हर्ष से उठा लिया।

विशेष रावण के दुर्वचन से सीता का दुःख बढ़ गया और वे त्रिजटा से कहती है, "दुसह विरह दुःख सहा न जाई।" आगे फिर "आनु काठ रचि चिता बनाई। मातु अनल तुम देहु लगाई॥" पुनः अशोक वृक्ष से कहती हैं "सुनहु विनय मम बिटप असोका " - " देहु अगिनि तनु करहु निदाना॥"

शब्दार्थ चितव=देख; मुँदरी=अँगूठी, सहिदानी=चिह्न, निशान।

भावार्थ सरल है।

विशेष [१] "हरस विषाद हृदय अकुलानी ' " (१) हर्ष इसलिये कि प्रिय की प्रिय वस्तु है, उसके दर्शन से प्रिय का बोध होता है। (२) राम या उनके सहायक समीप तक पहुँच आये हैं।

विषाद इसलिये कि कही कोई अनिष्ट तो नहीं हो गया जो राम की अँगूठी राक्षसो के हाथ मे पड़ गयी !

[२] "माया ते असि रचि नहिं जाई।" इसकी नकल नहीं की जा सकती, छल से दूसरी तैयार नहीं की जा सकती।

[३] "नर वानरहिं संग कहु कैसे " हनुमान की बातो में विश्वास करने के पहले वे जाँच लेना चाहती है कि कोई धोखा तो नहीं दे रहा है। राम से सुग्रीव हनुमान आदि की मैत्री

सीता हरण के बाद हुई, अतः उन्होंने पूछा कि मनुष्य और वानर का साथ कैसा ।

शब्दार्थ हरिजन=प्रभु का सेवक, भक्त, पुलकावलि ठढ़ी =आनन्द से रोम खड़े हो गये; बूड़त=डूबती हुई; जलधि= समुद्र; जलयाना=नाव; खरारी=राम (खरदूषण को मारने वाले) बानि=आदत; सुरति=याद, स्मरण; ताता=हे तात !; निपट=बिलकुल; सुकृपा निकेता=करुणा निधान; ऊना=तुच्छ, छोटा, उदास; जातुधान=राक्षस, भट=योद्धा; भूधराकार= पर्वताकार; साखामृग=वानर; व्याल=सर्प ।

भावार्थ सरल है ।

शब्दार्थ नायेसि=नवाकर ; कीसा=कपि (हनुमान) अमोघ=अचूक; रूखा=वृक्ष; रजनीचर=राक्षस ।

भावार्थ सरल है ।

विशेष 'आशिष तब ......" राम का प्रिय जानकर सीता ने आशीर्वाद दिया कि

आशिष दीन्ह राम प्रिय जाना । होहु तात बल रूप निधाना ॥
अजर अमर गुणनिधि सुत होहू । करहिं सदा रघुनायक छोहू ॥

शब्दार्थ पैठेउ=घुसे ; अवमारे=घायल; अछयकुमारा= अक्षयकुमार; तर्जा=उछले; निपाति=मारकर; मर्देसि=कुचल डाला; मरकट=बन्दर; बलभूरि=बहुत बली ।

भावार्थ (जानकी जी को) प्रणाम कर (हनुमान) चले और बाग में घुसे । वहाँ फल खाकर वे वृक्षों को तोड़ने लगे । रक्षक राक्षसों को उन्होंने मसल-मसलकर पृथ्वी पर फेक दिया, अधमरे जो बचे हुए थे, वे रावण के पास चीत्कार करते पहुँचे । तब फिर रावण ने अपने पुत्र अक्षयकुमार को भेजा । वह साथ में अनेक अच्छे योद्धाओं को लेकर चला । उसे आते देख

हनुमान जी हाथ मे एक वृक्ष लेकर बड़े जोर से उछले और उसे मारकर उन्होंने अत्यन्त जोर से गर्जना की। अक्षयकुमार के साथ आये हुए राक्षसों मे से कुछ को उन्होंने मारा, कुछ को मसल डाला, कुछ को पकड़कर धूल मे मिला दिया और जो बचे वे जाकर रावण से बोले कि हे प्रभु बन्दर अत्यन्त बली है।

शब्दार्थ रिसाना=क्रोधित हुए; जनि=मत, नहीं; इन्द्र जित=मेघनाद (उन्होंने एक बार इन्द्र को जीता था, अतः यह नाम पड़ा); निधन=मृत्यु; ब्रह्मबान=ब्रह्मास्त्र; परतेहु=गिरते. नागपाश=वरुण के एक अस्त्र का नाम, (मेघनाद ने इसे इन्द्र से प्राप्त किया था); दुर्वाद=दुर्वचन; कटक=सेना संहारा=मारा।

भावार्थ दोहो का रावण हनुमान को देखकर दुर्वचन कहकर हँसने लगा। फिर अपने पुत्र (अक्षयकुमार) के वध का स्मरण कर उसके हृदय मे खेद उत्पन्न हुआ। रावण ने सब को समझाकर कहा कि बन्दरो की ममता पूँछ पर रहती है, इसलिये कपड़े को तेल मे डुबाकर पूँछ मे बाँध दो, फिर अग्नि लगा दो।

शब्दार्थ जातुधान=राक्षस; कौतुक=तमाशा, विनोद; निबुकि=निकलकर; अटारी=महलो का ऊपरी भाग; मरुत उञ्चास=इन्द्र के कारण, भगवान विष्णु द्वारा हिरण्य कशिपु और हिरण्याक्ष, दोनो पुत्रो के वध हो जाने पर इन्द्र को मारने के लिये, कश्यप ऋषि की सलाह से, उसकी सौतेली माता दिति जब पुन्सवन व्रत कर रही थी, तब एक दिन इन्द्र ने योग बल से गर्भ मे घुसकर गर्भस्थ शिशु के उन्चास टुकड़े कर डाले

थे। ये ही जीवित उन्चास-मरुत हुए। इनके एक साथ बहने से प्रलय होता है।

भावार्थ मूर्ख राक्षस रावण के वचन सुनकर वही करने लगे, जो उसने कहा था। यह तमाशा देखने के लिये नगर के लोग आये और वे (हनुमान को) लात मारकर जोर से हँसने लगे। हनुमान ने अग्नि को देखकर (लघिमा सिद्धि के अनुसार) अपने रूप को छोटा कर लिया और वे बन्धनों (नागपाश) के बीच से निकलकर सोने की अटारी पर चढ़ गये। यह देख-राक्षसों की स्त्रियाँ डर गयीं। (ग्रन्थकार कहते हैं कि) उस समय भगवान की प्रेरणा से उनचासों पवन (जो केवल प्रलय काल में चलते हैं) चलने लगे। हनुमान जी अट्टहास कर गरजने लगे और उन्होंने (गरिमा सिद्धि के अनुसार) अपने शरीर को आकाश तक बढ़ा लिया।

विशेष "कौतुक कहँ ... " (१) बन्दर की पूँछ मे तेलयुक्त कपड़ा बाँधकर आग लगाना, नगर-वासियों के लिये 'कौतुक' था।

(२) हनुमान ने यह कौतुक किया कि पूँछ को बढ़ाना शुरू किया।

शब्दार्थ हरुआई=हल्का; भा=हुए; बिहाला=व्याकुल; मँझारी=मध्य में; श्रम=थकावट।

भावार्थ हनुमान जी का शरीर परम विशाल होने पर भी हल्का था। वे एक महल से दूसरे महल पर चढ़ जाते थे। नगर जलने लगा और सब लोग व्याकुल हो गये और अग्नि की असंख्य कराल लपटें निकलने लगीं; घूम-घूम कर वे (इस) भाँति लंका को जलाने लगे और (बाद में) समुद्र के बीच मे

कूद पड़े। पूँछ (की आग को बुझा, थकावट को दूर कर पुनः छोटा रूप धारण कर, वे जानकी के सम्मुख हाथ जोड़कर उपस्थित हुए।

विशेष अत्याचारी रावण ने ब्राह्मणों के गाँवों में आग लगाई थी, गउओं को नष्ट किया था, इसी का बदला हनुमान ने लंका जलाकर लिया है।

शब्दार्थ पीन्हा=पहिचान, निशानी; चूड़ामणि सिर का आभूषण।

भावार्थ सरल है।

विशेष पूड़ामणि सौभाग्यवती स्त्रियाँ सिर पर चूड़ामणि धारण करती है। राम ने 'अँगूठी' इसलिये दी की सीता अमर रहे, सीता ने चूड़ामणि देकर राम की दी हुई चीज को शिरोधार्य किया।

शब्दार्थ--मंत्र दढ़ावा=विचार किया; अनी=सेना की टुकड़ी, यूथप=सेनापति; केहरि नाद=सिंह नाद। (अंगद द्वारा)

भावार्थ श्री रामने शत्रुओं के समाचार पाकर, मन्त्रियों को अपने पास बुलाया। (सुग्रीव, जामवन्त विभीषण आदि ने) दढ़ विचार कर सेना का चार भाग किया और यथायुक्त सेनापति की नियुक्ति की। (तब) सब सेनाधीश बुलाये गये और राम की महिमा कहकर उन्हें समझाई, जिसे सुनकर बन्दर सिंहनाद कर चल पड़े। भालू और बन्दर गर्जन-तर्जन करते हैं कि कोशलाधीश रघुवीर की जय हो। 'श्रीराम की जय', 'श्री लक्ष्मण की जय', 'वानर राज सुग्रीव की जय' इस प्रकार बोलते हुए तथा हुंकारते हुए महा पराक्रमी रीछ तथा बन्दर गरजने लगे।

शब्दार्थ भिंडिपाल = फेंक कर प्रहार करने का अस्त्र, सांगी = भाला; गिरिखंडा = पहाड़ की शिलाएँ; नानायुध = अनेक अस्त्र-शस्त्र; सरचाप = धनुष-बाण।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ चरल = चंचल।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ सुभट्टा = वीरवर; मर्दहु = मार डालो; ठट्टा = समूह; हौं = मैं (रावण); रेगाई = चलाई; सपच्छ = पंख सहित: भूधर = पहाड़; दसन = दाँत; द्रुमायुध = वृक्षों के अस्त्र; मृगराज = सिंह; जोरी = जोड़ी, बराबर, बखान = वर्णन करते।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ रथी = रथयुक्त; विरथ = रथहीन; पदत्राण = जूते: स्यंदन = घोड़ा; सौरज = सौम्य; घोरे = घोड़े; रज्जु = रस्सी; विरति = वैराग्य, कृपाना = कृपाण, कोदंडा = धनुष; त्रोन = तर्कश: शिलीमुख = बाण; दसकंधर = रावण; कृतांत = यमराज; स्रवत = बहता है; सोनित = रक्त, राजहीं = शोभित हैं. गाजहीं = गरजते हैं, छीजही = कमजोर होते हैं, तल = गला; मेल हीं = पहना देते है।

भावार्थ विभीषण रावण को रथपर तथा राम को रथहीन देखकर अधीर होगये। (श्रीराम के प्रति) अधिक प्रीति होने के कारण उनके मन मे सन्देह हो गया। वे स्नेह सहित श्री राम के चरणों की वंदना कर बोले कि हे नाथ! आपके पास न रथ है, न पाँव में जूते; (इस स्थिति मे) आप ऐसे बलवान वीर (रावण) को किस तरह जीतेंगे। कृपानिधान श्रीराम ने कहा कि हे सखा! सुनो, जिससे जीत होगी वह रथ दूसरा है।

सौम्य और धैर्य (यही) रथ के दो पहिये हैं, सत्य और शील मजबूत ध्वजा और पताका हैं, बल, विवेक, दम (इन्द्रियों का दमन) और परोपकार यही चार घोड़े हैं, जो क्षमा, कृपा एवं समता रूपी रस्सी से जुड़े हैं; ईश्वर का भजन चतुर सारथी (रूप) है; वैराग्य ढाल है एवं सन्तोष तलवार है। दान फरसा (परशु) है; बुद्धि प्रचंड शक्ति है; श्रेष्ठ विज्ञान कठोर धनुष है; निर्मल तथा स्थिर मन तर्कश के समान है; संयम नियम अनेक प्रकार के बाण हैं; ब्राह्मण और गुरु की पूजा अभेद-कवच है; इसके समान विजय का दूसरा साधन नहीं है। हे सखा ! ऐसा धर्ममय रथ जिसका है, उसको जीतने वाला शत्रु कोई नहीं है।

हे धैर्यवान सखा ! सुनो, जिसके ऐसा मजबूत रथ हो, वही वीर संसार रूपी अजेय शत्रु को जीत सकता है। प्रभु के वचन सुन, विभीषण ने प्रसन्न हो उनके चरण कमल को पकड़ लिया, तथा कहने लगे कि हे दया एवं सुख के निधान श्री रामजी! आपने इस बहाने मुझे उपदेश दिया है। उधर रावण ने, इधर अंगद-हनुमान ने ललकारा। राक्षस और वन्दर-भालू अपने अपने स्वामी की दुहाई दे दे कर लड़ने लगे।

वन्दर यमराज के समान क्रोधित हो रहे थे, उनके शरीर से रक्त बह रहा था। वे बलवान राक्षसों की सेना के योद्धाओं को रगड़ते एवं मेघ की तरह गरजते थे। वे थप्पड़ मारते, गुर्राते, दाँतों से काटते तथा लातों से रौंद देते थे। रीछ और वन्दर किलकारी मारते और ऐसा छल-बल करते थे, जिससे दुष्ट राक्षस शक्ति हीन हो जाते थे। वे उन्हे पकड़ कर उनके गाल फाड़ डालते, छाती विदीर्ण कर डालते तथा अँतड़ियाँ निकाल गले में पहना देते थे।

विशेष- ऊपर लिखे सांग रूपक मे तुलसी के ज्ञान प्रसंग की एक झलक है; इसमे उनके दार्शनिक सिद्धांत की विवेचना है।

अलंकार सांग रूपक।

शब्दार्थ सायक=बाण; नाभि सर=नाभिकुंड; अपर=दूसरा, करि रोखा=तेजी से, नराचा=बाण; कड=धड़; महि=पृथ्वी; धरनि=पृथ्वी; धर=धड़; धाव प्रचंडा=प्रचंड दौड़; शरहति=बाण मार कर, कृत–किया; जुग=दो; हतौं=मरता हूँ, प्रचारी=ज्ञात हो, छुभित=क्षुब्ध; चापि=दबाकर; दिग्गज=(१) पुराणानुसार वे आठो हाथी आठो दिशाओं में पृथ्वी को दबाये रखने और उनकी रक्षा करने के लिए स्थापित हैं (२) बहुत बड़ा; भूधर=पर्वत; संकुल=व्याप्त हो गया; सुखकंद=सुख के मूल; वृन्द=समूह।

भावार्थ सरल है।

शब्दार्थ कंचन=सोना, केतू=ध्वजा; बीथी=मार्ग; गजमनि=गजमुक्ता, निशान=नगाड़ा; आरतहर=भगवान, श्रीराम; राकेश=चन्द्रमा।

भावार्थ दोहे का अवध रूपी तालाब मे कुमुदिनी रूपी स्त्रियाँ श्रीराम के विरह रूप सूर्य के कारण सम्पुट (बिनाखिली) थीं। जब विरह रूपी सूर्य अस्त हुआ तब वे स्त्रियाँ श्री राम को देखकर उसी प्रकार खिल पड़ी, जिस प्रकार चंद्रमा को देखकर कुमुदिनी विकसित हो जाती है। शेष सरल है)।

अलंकार रूपक।

शब्दार्थ बोलाई=बुलाया; अनुसासन=आज्ञा; अतिभाये=अत्यंत आनंदित हुए; अभिराम=सुन्दर; अभिषेक=राज्य तिलक, करीजे=कीजिये; विहँगेस=गरुड़।

भावार्थ दोहे का (कागभुशुण्डजी कहते हैं कि) हे गरुड़! सुनो; रामराज्य में जितने चर-अचर संसार मे है, उन सबको काल, कर्म और स्वभाव से दुःख नही व्यापता था, (अर्थात सभी सुखी थे)।

शेष सरल है।

शब्दार्थ भूमि सप्त=सातो द्वीप वाली, पृथ्वी; सुमेखला=घिरी हुई, वेष्टित; कोसला=अयोध्या, साकेत; रतिमानी=स्नेह किया; फणीस=शेष; सारदा=सरस्वती।

भावार्थ (ग्रंथकार तुलसीदास जी कहते हैं कि) समुद्र से वेष्टित, सातो द्वीप वाली पृथ्वी के एक अयोध्या-नाथ श्रीराम राजा थे। जिनके प्रति रोम मे अनेक ब्रह्माण्डो का नित्य निवास है, उनके लिए यह प्रभुता कुछ बहुत नही है। श्रीराम की उस महिमा को समझते हुए उसका वर्णन करना अत्यंत हीनता (का द्योतक) है। पर हे गरुड़, (कागभुशुण्ड जी कहते हैं,) जिन्होने (प्रभुकी) उस महिमा को जान लिया है, फिर उन्होने इस चरित्र पर स्नेह किया है। उस महामहिमा के जानने का फल इस लीला का अनुभव है। इसलीला को वरद् सुशील महामुनि ही कहते है। रामराज्य की सुख सम्पत्ति को शेष और सरस्वती भी वर्णन नही कर सकते। (तुलसीदास कहते हैं कि) रे शठ मन! सुन, पतितो को पावन करने वाले श्रीराम का भजन करके सब ने सद्गति पाई है। वेश्या (गणिका) अजामिल, व्याध गीध (जटायु) गज आदि बहुत से दुष्टो को (उन्होने) तार दिया है। आभीर, म्लेच्छ, कोल, किरात, कसाई, स्वपच (डोम) आदि जो अति पापरूप थे, वे भी एक बार राम नाम कहकर पवित्र होगये। ऐसे श्रीराम को मैं नमस्कार करता हूँ।

हे रघुवंश मणि ! मेरे समान दीन और आपके समान दीनो का हित करने वाला कोई नही है, ऐसा विचार कर मेरी विषम संसार-बाधा को दूर कीजिये।

पद

[१] शब्दार्थ अबलौं=अबतक; नसानी=नष्ट हो गई; भवनिसा=सन्सार रूपी रात्रि, सिरानी=खत्म हो गई, बीत गई; डसैहौं=बिछाऊँगा; चारु=सुन्दर; चिंतामणि=एक रत्न (यहाँ भगवान); उर-कर=हृदय रूपी हाथ खसैहौं=गिराऊँगा; सुचि=पवित्र; कसौटी=सोना जाँचने का पत्थर; कंचन=सोना; मधुकर=भौंरा; पनकै=प्रणकरके।

भावार्थ अब तक (की आयु तो व्यर्थ ही) नष्ट हो गई, परन्तु अब (व्यर्थ) नष्ट नहीं होने दूंगा। श्री राम की कृपा से संसार रूपी रात्रि बीत गयी है (मै संसार की मोह-रात्रि से जग गया हूँ। अब जागने पर फिर (माया का बिछौना) नहीं बिछाऊँगा (अब फिर माया के जाल मे नहीं फसूँगा)। मुझे रामनाम के समान सुन्दर चिंतामणि मिल गयी है। उसे हृदय रूपी हाथ से कभी नहीं गिरने दूंगा (अथवा हृदय से राम का नाम एक पलभी नहीं बिसारूंगा और हाथ से राम नाम की माला जपा करूँगा।) श्री राम कोपवित्र श्याम-सुदर रूप की कसौटी बना कर अपने चित्त-रूपी सोने को कसूंगा (ताकि मेरा मन सोने का सा उज्ज्वल होगा)। जब तक मै इंद्रियों के वश मे था (इन्द्रियासक्त था), तब तक उन्होंने (मुझे मनमाना नाच नचा कर) मेरी बड़ी हँसी उड़ाई (मुझे हास्यास्पद बना दिया); परन्तु अबस्वाधीन होने पर (इन्द्रियो पर विजय पालेने पर) अपनी हँसी नहीं कराऊँगा। अब तो अपने मन रूपी

(रस के लोभी) भ्रमर को प्रण करके श्री राम के चरण कमलों मे लगा दूंगा (याने श्री राम के चरणों को छोड़ कर दूसरी जगह मन को जाने ही न दूंगा)।

विशेष इसी प्रकार की आत्म-समर्पण की भावना सूर ने भी निम्न पंक्ति मे व्यक्त की है 'मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।'

[२] शब्दार्थ कबहुँक=कभी भी; गहौंगो=ग्रहण करूँगा; परुष=कठोर; स्रवन=कान; क्रम=कर्म, नेम=नियम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये दस यम-नियम हैं।); पावक=अग्नि, दहौंगो=जलूंगा; विगत मान=अभिमान त्याग कर; परि हरि=छोड़ कर।,

भावार्थ क्या मैं कभी इस विधि से रहूँगा कि कृपालु श्री रघुनाथ जी की कृपा से मैं संतों का सा स्वभाव ग्रहण कर सकूँगा। जो कुछ प्राप्त हो जायगा उसी मे संतुष्ट रहूँगा, किसी (मनुष्य या देवता) से कुछ भी न चाहूँगा। सदैव दूसरों की भलाई करने मे ही लगा रहूँगा; मन वचन और कर्म से यम नियमों का पालन करूँगा। कानो मे अति कठोर असह्य वाणी सुनकर भी उससे उत्पन्न हुई (क्रोध की) आग मे न जलूंगा (अर्थात् क्रोध न करूंगा)। अभिमान छोड़कर समान रूप से मन को शांत रखते हुए दूसरों की स्तुति-निंदा कुछ भी नही करूंगा। शरीर सम्बन्धी चिन्तायें छोड़कर सुख-दुःख को समान भाव से सहन करूंगा। तुलसीदास जी कहते है कि हे नाथ, इस प्रकार रहकर क्या मैं कभी अटल भगवद्भक्ति प्राप्त कर सकूँगा?

टीप तुलसीदास जी अपने से ही पूछते हैं कि क्या मेरा जीवन इस प्रकार कभी हो सकेगा, मैं भगवान की अनन्य भक्ति प्राप्त कर सकूँगा ?

[३] शब्दार्थ कंत=पति; ब्रज वनिता=ब्रजबाला; मनियत=माने जाते हैं; सुसेव्य=पूजनीय; एतो=इतना ।

भावार्थ जिसे श्री राम सीता जी प्यारे नहीं (जो इनकी भक्ति नहीं करता), उसे महाशत्रु (या करोड़ों शत्रुओं) के समान छोड़ देना चाहिये, चाहे वह अत्यंत प्रिय क्यों न हो। (इसीलिये) प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु को (ईश-द्रोही होने के कारण), विभीषण ने अपने प्रिय भाई (रावण) को भरत ने अपनी माता (कैकेयी) को, राजा बलि ने अपने गुरु शुक्राचार्य को और ब्रज की गोपिकाओं ने अपने अपने पतियों को (भगवत्प्राप्ति में बाधक जानकर) त्याग दिया तथा ये सभी संसार का कल्याण करने वाले हुए। जितने सुहृद और पूजनीय लोग है, वे सब श्री राम के ही सम्बन्ध और प्रेम के कारण माने जाते है। मैं अधिक कहाँ तक कहूँ, जिस अंजन के लगाने से आँखे (अधिक ज्योति वाली न होकर) फूट जायँ, वह अंजन ही किस काम का (अर्थात व्यर्थ है)। तुलसी दास जी कहते हैं जिसके कारण (जिसके सत्संग या उपदेश से) श्री राम के चरणों में प्रेम हो, वही सब प्रकार से अपना परम हितकारी, पूजनीय और प्राणों से भी अधिक प्यारा है। हमारा तो यही मत है।

[४] शब्दार्थ मूढ़ता=मूर्खता, परिहरि=छोड़कर, सेन=बाज पक्षी; गज काच=कांच का फर्श; अहार बस=भूख के मारे; क्षति=हानि, आनन=मुख;

भावार्थ इस मन की ऐसी मूर्खता है कि यह राम भक्ति रूपी (परम फलदायिनी) गंगा को छोड़कर, ओस की बूंदों से तृप्त होने की आशा करता है। जैसे प्यासा पपीहा धुंएँ को देख-

कर उसे मेघ समझ लेता है, किन्तु वहाँ (जाने पर) न तो उसे शीतलता मिलती है, और न जल मिलता है वरन् धुएँ से आँखें फूट जाती है, (यही गति इस मन की है) । जैसे मूर्ख बाज पक्षी कांच के फर्श मे अपने ही शरीर की परछाईं देखकर, भूख के मारे यह भूलकर कि उस पर चोच मारने से वह टूट जायगी, आतुरता स उस पर टूट पड़ता है, (वैसे ही) यह मेरा मन भी विषयो की ओर आकृष्ट होता है । हे कृपानिधि ! (उसकी) दुर्गति (कुचाल) का मैं कहाँ तक वर्णन करूँ ! आप तो मन के भावो को जानते ही है । तुलसीदास जी कहते हैं कि हे स्वामी ! (इस दास का) दारुण दुःख हर लीजिये और अपने (शरणागत वत्सलता रूपी) प्रण की रक्षा कीजिये ।

[५] शब्दार्थ केकि=मयूर; वपु=देह; रुचि=सुन्दर; अलकैं=बाल, कुटिल=घुघराले; भ्रू=भौं; नलिन=कमल; सचुपाये=आनंदित हुई; पानि=हाथ, उभय=दो; अंभोज=कमल, अरुन=बालरवि; विधु=चंद्रमा, अलि=भ्रमर, स्रुति=वेद, ऋचा=श्लोक; बरबानी=श्रेष्ठ वाणी ।

भावार्थ माता कौशल्या रामचंद्र को झूले मे झुलाती हैं । प्रेम से (राम का) नाम ले लेकर कौशल्या मधुर स्वर से उनके सुयश का गान करती हैं । उनके शरीर का साँवला रग मयूर के कंठ की द्युति के समान है, उनके शरीर पर सुन्दर सुन्दर बालोचित आभूषण शोभित हो रहे हैं । उनके सुन्दर घुंघराले बाल भौंहों तक लटक रहे हैं और दोनो नेत्र नील कमल के समान शोभा पारहे है । बाल स्वाभाववश जब वे (रामचंद्र) किसलय (पल्लव) के समान (कोमल) चरण को, अपने हाथो से पकड़ कर अपने मुख तक लाते हैं, (तब ऐसा प्रतीत होता है) मानों दो सुन्दर (काले) सर्प (सांवले हाथ) चंद्रमा (मुख चंद्र) से

प्राप्त अमृत कमल मे भरभर कर सुख-पूर्वक ले रहे हो। ऊपर में (लटकते हुए) अनुपम खिलौना देखकर किलकारी भरते है और बार बार अपने हाथो को (उन्हें पाने की चेष्टा करते हुए) फैलाते हैं (तब ऐसा प्रतीत होता है) मानो दो कमल दोनो हाथ जिनको उपमा सदैव कमल से दी जाती है) चद्रमा से भयभीत होकर, बाल रवि से अति दुःखी हो, विनती कर रहे हों। तुलसीदासजी कहते है कि भ्रमर रूप भक्त गण, आपके गुणों से प्रेरित होकर कीर्तिगान (गुंजन) कर रहे हैं। तिस पर भी उस सौंदर्य का वर्णन नही किया जा सकता, मानो सभी वेदों की ऋचाएँ भ्रमर बनकर (आपकी) महान् कीर्ति का वर्णन श्रेष्ठ शब्दो मे कर रहे हों (फिर भी वे 'नेति नेति' कहकर थक जाते हैं)।

विशेष (१) वात्सल्य रस का यह अत्यन्त श्रेष्ठ पद है।
(२) अनुप्रास, रूपक उत्प्रेक्षा एक मे गुँथे होने पर भी भावो की अस्पष्टता नही आने पाई।

[६] शब्दार्थ वदन=मुख; निपट=बिलकुल; लकुट=लकड़ी, कर ते=हाथ से; लोचन चारु=सुन्दर आँखें; स्रवत=झरता है; अपनपो=अपनापा, ममत्व; बारु=वार देता है, भूल जाता है; मरकत=नीलमणि; लसत=शोभित; बिसद=श्वेत; तुषार=हिम; सतर=क्रोधभरी, महरि=यशोदा; रिस=क्रोधित; निरखि=देखकर।

भावार्थ (गोपिका कहती है कि) श्रीकृष्ण का सुन्दर मुख तो देखो। निष्ठुर के समान (यशोदा उन्हे) जब एकदम डॉटती हो, तो (डरवश) हाथ से लकड़ी छूट जाती है। उनकी सुन्दर अञ्जन लगी हुई ललित आँखो से अश्रुकण झरने लगते

हैं। अश्रु से भरे हुए (सजल) श्याम का मुख (उस समय ऐसा प्रतीत होता है) मानों चन्द्रमा से सौंदर्य की सुधा झरती हो। उनके हृदय पर टपके हुए दही की बूँदें (इस प्रकार-शोभित होती है) मानो मरकत (शैल) के कोमल शिखर पर श्वेत हिम शोभित हो, जिसे देखकर (-शोभा से मुग्ध लोग) अपने आप को भूल जाते हैं। हे यशोदा! मन मे विचार कर तो देखो कि कृष्ण पर क्रोध करना क्या उचित है। तुलसीदास जी कहते हैं कि कृष्ण को देखकर क्यो क्रोधित हो।

विशेष 'मरकत मृदु शिखर' मरकत कृष्ण के साँवले शरीर के लिये आया है। हीरा कठोरतम पदार्थ होता है किन्तु कृष्ण का शरीर है इसीलिये 'मृदु' कहा है।

अलंकार उत्प्रेक्षा।

[७] शब्दार्थ सकारे=सबेरे, अवलोकि=देखकर हौं=मैं; सोच विमोचन=शोक को दूर करने वाले; सु-खंजन-जातक=सुन्दर खंजन पक्षी का बच्चा, समसील=समान; सरोरुह=कमल।

भावार्थ- (अयोध्या की एक स्त्री अपनी सखी से कहती है) हे सखी, मे आज सबेरे राजा दशरथ के द्वार पर गयी थी। (देखा,) राजा अपने पुत्र राम चन्द्र को गोद में लेकर बाहर निकले। दुःख दूर करने वाले (श्री राम) को देखकर मैं मुग्ध सी हो गयी। जो उन्हे देखकर मुग्ध नहीं, उन्हे धिक्कार है। तुलसी दास जी कहते हैं कि वे सुन्दर खंजन पक्षी के बच्चे की-सी काजल लगी हुई, मन को आनंदित करने वाली आँखें ऐसी प्रतीत होती है, हे सजनी! मानो चन्द्रमा (चन्द्र-मुख) मे एक ही तरह के दो नये नील-कमल खिले हो।

विशेष (१) उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।
(२) सवैया छंद है।

शब्दार्थ- द्युति=कांति; भूरि=बहुत; अनंग=कामदेव; दामिनि=बिजली; कल=सुन्दर।

भावार्थ-उनके (साँवले) शरीर की कांति नीले कमल के समान है; उनके नेत्र कमल की सुन्दरता को मात करने वाले हैं। धूल से लिपटे हुए श्री राम के सुन्दर शरीर की शोभा, कामदेव की अत्यन्त सुन्दरता को भी एक कोने में कर देती है। छोटे-छोटे दाँतों की कांति बिजली के समान है; वे किलकारी मारते, सुन्दर बाल-क्रीड़ा करते हैं। महाराज दशरथ के ऐसे चारों बालक तुलसी दास के मनरूपी मन्दिर में सदा विहार करें (तुलसी के मन में बसे रहें)।

विशेष अनुप्रास तथा उपमा अलंकार हैं।

शब्दार्थ वर=सुन्दर; पंगति=पंक्ति, कुंद=पुष्प विशेष; अधराधर=दोनों ओठ, घन=बादल; चपला=बिजली; लटैं=बाल, लोल=चंचल, कपोल=गाल।

भावार्थ (हँसते समय) कुंद की कली के समान सुन्दर (श्वेत) दाँतों की पंक्ति पर, नये लाल पत्तों के समान दोनों ओठों के खोलने की सुन्दरता पर, बादलों के बीच बिजली-सी चमकती हुई बहुमूल्य मोतियों की माला के सौंदर्य पर, मुख पर लटकती हुई घुँघराली लटों की शोभा पर, गालों पर झूलते हुए कुंडलों की मनोहरता पर तथा (तोतली) बोली के मिठास पर तुलसी दास बलि जाता है तथा अपने प्राणों को न्योछावर करता है।

विशेष (१) रूपकालंकार
(२) ये सवैये वात्सल्य-रस के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

[८] शब्दार्थ पुनीत=पवित्र; बारि=जल; पुरारि=शिवजी; त्रिपथ गामिनी=आकाश; पाताल और भूलोक में बहने वाली; गंगा; पठावनी कै—पार उतार कर, भेजकर, मजदूरी।

भावार्थ (केवट कहता है कि) जिनके चरणों से निकले हुए जल को शिव जी अपने मस्तक पर धारण करते हैं तथा वेद (उस) त्रिपथगामिनी (गंगा) का यश गाते हैं, जिन चरणों को पाने के लिए बड़े-बड़े योगी, मुनिगण और देवता जन्म भर मन लगाकर वैराग्य, जप और योग-साधन करते हैं, तुलसीदास जी कहते हैं कि जिन चरणो की धूल का स्पर्श कर अहल्या तर गयी और गौतम ऋषि गौने की स्त्री के समान उसे लेकर अपने घर गये, उन चरणों को पाकर बिना धोये नाव पर चढ़ा उस पार भेज मैं अपनी मजदूरी नहीं खोऊँगा और न अपनी हँसी कराऊँगा।

शब्दार्थ घरनिहिं=पत्नी को; कठौता=लकड़ी का बर्तन; आनि=लाकर; फेरि-फेरि=बार-बार; टेरि-टेरि=पुकार-पुकार कर; बिबुध=देवता; असयानी=अचतुर; हेरि हेरि=देख-देखकर।

भावार्थ (केवट ने) प्रभु का रुख जानकर स्त्री-बच्चों को बुलाया। सब के सब श्री राम के चरणों की वन्दना करके चारो ओर घेर कर बैठ गये। छोटे से काठ के बर्तन मे गंगाजल भर कर ले आये और चरण धोकर वह पवित्र जल बार-बार पीने लगे। तुलसीदास जी कहते हैं कि (उस समय) देवतागण प्रेमपूर्वक उस केवट के भाग्य की सराहना करने लगे और पुकार-पुकार कर जय-जयकार करते हुए पुष्प-वर्षा करने लगे। देवताओ की

प्रेम से भरी निश्छल वाणी सुनकर श्री राम लक्ष्मण और जानकी की ओर देखकर हँसने लगे।

दोहा

[१] भावार्थ चातक रूपी तुलसी दास कहते हैं कि (जिस प्रकार चातक को केवल स्वाति-जल का भरोसा रहता है उसी प्रकार मुझे) केवल स्वाति जल के समान श्रीराम के यश का ही भरोसा है, वही एक मात्र संबल और केवल उसी एक की आशा और विश्वास है।

विशेष चातक केवल स्वाति नक्षत्र में बरसे हुए जल को ग्रहण करता है। कबीर ने भी अन्यत्र कहा है

चातक सुतहिं पढ़ावही, आन नीर मत लेइ।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाति बूँद चित देइ॥

अलंकार रूपक।

[२] भावार्थ (१) पपीहा मानी कुल (ऊँची जाति) का है। वह पृथ्वी पर बरसे जल को ग्रहण नहीं करता। या तो वह मेघ से माँगता है, या (प्यास के मारे) शरीर का कष्ट सहन करता है।

विशेष इसी प्रकार कबीर ने भी कहा है यथा,

पपिहा को पन देखकर, धीरज रह्यो न रंच।
मरते दम जल मे पड़ा, तऊ न बोरी चंच॥

(२) स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए घटित करने पर 'अन्योक्ति' अलंकार होगा।

[३] भावार्थ तुलसी दास जी कहते हैं कि संत गण अच्छे (फल देने वाले) आम के वृक्ष के समान हैं, जो दूसरों के लिए (पर हेत) फूलते-फलते हैं। इधर से लोग उसपर पत्थर मारते है, (साधुओं से दुर्व्यवहार करते हैं) और उधर वे (साधु और आम के वृक्ष) मधुर फल देते हैं, (सुन्दर सीख देते हैं)।

[४] शब्दार्थ असन (अशन)=भोजन; अन्न, बसन= वस्त्र।

भावार्थ पापियो के घर भी भोजन, वस्त्र, पुत्र और नारी का सुख (प्राप्त हो सकता) है; किन्तु, तुलसी दास जी कहते हैं कि, साधुओ की संगति और राम रूपी धन, ये दो ही दुर्लभ है।

[५] भावार्थ तुलसी दास जी कहते है कि, हे सज्जनो! प्रीति, वैर, पुण्य और पाप (अघ) तथा कीर्ति-अपकीर्ति और हानि-लाभ इन सब का मूल (केवल) बात है (बात करने के ढंग से ही इनकी उत्पत्ति होती है)।

विशेष कबीर ने भी कहा है

सबद सम्हारे बो लिये; सबद के हाथ न पाँव।
एक सबद औषधि करै, एक सबद करै घाव॥

[६] भावार्थ (तुलसी दास जी कहते हैं कि) दुष्टजनो को दर्पण के समान सदा हृदय मे गौर करके देखना चाहिये। सामने रहने पर इनकी गति और ही रहती है (दर्पण मे प्रतिबिम्ब झलकता है और दुर्जन भी 'हाँ मे हाँ' मिलाते हैं, क्योंकि उनमे आत्म शक्ति की कमी रहती है) और परोक्ष में कुछ और ही होजाती है।

[७] शब्दार्थ साहब=भगवान; सेवक=भक्त।

भावार्थ (तुलसीदास जी कहते हैं कि) भगवान से उनके भक्त, जो अपने कर्तव्यों को समझते हैं, अपने कार्य मे चतुर हैं, कहीं बड़े हैं। (इधर) समुद्र को बाँधने पर ही उसे पार कर सके किन्तु हनुमान (बिना बाँधे ही) लाँघ गये।

[८] शब्दार्थ पावस=वर्षा ऋतु; दादुर=मेढक;

भावार्थ (तुलसी दास जी कहते हैं कि) वर्षा ऋतु मे कोयल (यह सोचकर) मौन हो जाती है कि अब तो मेंढक बोलेंगे तो (उनकी 'टर्र-टर्र' के आगे) हमारे स्वर की कौन कद्र करेगा।

अलंकार अन्योक्ति।

कबीर

[१] शब्दार्थ गुरू की महिमा बताते हुये जिन्हें वे भगवान से भी बड़ा मानते थे, कबीर दास जी कहते है कि मेरे समक्ष गुरु और भगवान दोनों उपस्थित हैं। मैं किसको नमन करूँ? मै अपने गुरु पर न्योछावर हूँ। (मैं) उन पर अपना जीवन वार दूँ, जिन्होंने ईश्वर से मिलने का मार्ग बता दिया ईश्वर से पहचान करा दी।

[२] भावार्थ माली को आते देख कर बाग की कलियाँ (दुःख से) पुकार पुकार कर कहने लगीं कि आज सब खिले हुए पुष्प चुन लिए गये; अब कल (खिलने पर) हमारी बारी

आयेगी। (मृत्यु के आगमन से विकसित यौवन की समाप्ति देख कर नवयुवक यह अनुभव करने लगते हैं कि विकास के उपरान्त हमारी मृत्यु भी अनिवार्य है।)

अलंकार अन्योक्ति

[३] शब्दार्थ बाढ़ी = बढ़ई

भावार्थ बढ़ई के आगमन से वृक्ष कंपित हो गये। उन्होंने (मानो यह कहा) कि हमारे कटने का कुछ दुःख नहीं किन्तु दुःख है कि हमारे आश्रित पक्षीगण निराधार होकर अन्यत्र चले जावेंगे। (यहाँ भी मृत्यु से संकेत है जिसके पास आने से प्राण शरीर छोड़ कर चले जाते हैं)

अलंकार अन्योक्ति

[४] भावार्थ शिशिर—(माघ, फाल्गुन में आने वाली एक ऋतु) को आते देखकर वन मन में दुखित हो उठे कि ऊंची डालियों के पत्ते पीले पड़ कर झड़ जावेंगे; वैभव, लुट जायगा।

[५] भावार्थ अज्ञानियों को, जो ईश्वर को अन्यत्र ढूंढ़ते हैं, कबीर दास जी कहते हैं कि तेरा परमात्मा तेरे अन्तर में उसी प्रकार है जिस प्रकार पुष्पों में सुगन्धि रहती है। कस्तूरी मृग जिस प्रकार अपनी अज्ञानता वश, अपनी ही कस्तूरी की सुगन्धि का अनुभव कर, उसे पाने के लिये बार बार घास को सूँघता है।

[६] भावार्थ चन्द्रमा के आकाश मे रहने पर भी, जल में बसने वाली कुमुदिनी उसे देख कर खिल पड़ती है (कुमुदिनी रात मे ही खिलती है)। जो जिसको प्रिय है वह उसकी समीपता का अनुभव करता है (अर्थात् सच्चा प्रेम के लिये दूरी कोई वस्तु नहीं, कोई व्यवधान नहीं।)

[७] भावार्थ जिसे बोलना आता है उसकी वाणी में, जीभ में अमृत की मधुरता रहती है किन्तु सर्प (वासुकी) की हर फुंफकार से जहर ही निकलता है।

[८] भावार्थ शिलाखंड अभिमान छोड़कर मार्ग में बिछने वाले पत्थर बनकर रहो (ताकि दूसरों का उपकार हो सके।) जो मनुष्य इस प्रकार दूसरो के लिये रहते हैं, उन्हें ईश्वर अवश्य प्राप्त होता है।

[९] भावार्थ यदि पत्थर (कठोर) हो भी गया तो क्या जो कि पथिकों को दुःख देने वाला होता है। प्रभुजन (मनुष्य) तो ऐसा होना चाहिए जिस प्रकार पृथ्वी की धूल (जो कि पद दलित होने पर भी) मार्ग को सरल बनाती है।

[१०] शब्दार्थ खेह=धूल

भावार्थ यदि धूल भी हो गई तो क्या लाभ जो कि उड़ उड़ कर शरीर को मैला कर देती है। प्रभु के लोग तो इस प्रकार होने चाहिये जिस प्रकार की पानी (जिसका कि कोई रंग नही आता और शरीर में लगने से शरीर को पवित्र ही बनाता है।)

[११] शब्दार्थ ताता=गरम; सीरा=ठंडा;

भावार्थ यदि पानी भी बन गया तो क्या लाभ जो शीघ्र ही गरम और ठंडा हो जाता है (जो कि शीघ्र ही अपना गुण छोड़ देता है)। प्रभु के मनुष्य तो ऐसे होने चाहिये जैसे कि स्वयं भगवान होते है (अर्थात् ईश्वर के समान निर्विकार होना चाहिये)।

[१२] शब्दार्थ साधू=सज्जन; सुभाई=स्वभाव: गहि=ग्रहण कर, थोथा=व्यर्थ, छिलका।

भावार्थ सज्जन तो सूप के स्वभाव का होना चाहिये, जो कि सार वस्तु ग्रहण करे, छिलके आदि व्यर्थ की वस्तुओं को त्याग देता है।

[१३] शब्दार्थ लेहड़े=झुंड; पांत=कतार; लाल=कीमती पत्थर, जवाहर।

भावार्थ न सिंह झुण्ड के साथ चलते है और न हंस पंक्तियों में दिखाई पड़ते हैं। मणि-माणिक्य ढेर से बोरों में नहीं मिलते और न सच्चे साधु गिरोह में ही पाये जा सकते। (ये सब अत्यंत विरले होते हैं, इसी प्रकार सच्चे प्रतिभावान भी युग में एक-दो ही होते हैं।)

[१४] शब्दार्थ लघुता=छुटाई; प्रभुता=महत्व।

भावार्थ अपने को छोटा मानकर चलने में ही सच्चा महत्व मिलता है, ईश्वरी गुण प्राप्त होता है। किन्तु दम्भवश जो अपने को बड़ा मानते हैं वे ईश्वर के प्रेम-भाजन नहीं बन सकते, ईश्वरत्व उन्हें नहीं मिल सकता। तुच्छ चींटी सतत् परिश्रम करके शक्कर (मधुर फल) पा जाती है और हाथी अपनी गुरुता के अभिमान में धूलि ही अपने शिर पर उछालता है।

[१५] शब्दाथ आछे=अच्छे; पाछे गये=बीत गये; हेत=प्रेम।

भावार्थ अच्छा अवसर बीत गया किन्तु (हे जीव!) तुमने ईश्वर से प्रेम नहीं किया। अब पश्चाताप करने से क्या लाभ, जब कि समय हाथ से निकल गया। (चिड़ियाँ चुग गईं खेत)

[१६] भावार्थ (दिखावटी साधुओं पर व्यंग करते हुए कबीरदास जी कहते हैं कि) सिर के बाल कटा डालने से (जैसा

कि तीर्थादि गमन के समय पंडित लोग कहते हैं) ईश्वर मिलता हो तो सभी कोई सिर घुटा डालें (क्योंकि यह बहुत छोटा काम है, बाह्य आडम्बर मात्र)। बारम्बार भेड़ के बाल काटे जाने पर भी सिर्फ इसी कारण न उसके अवयव में ही परिवर्तन होता है और न वह ईश्वर को पाने का अधिकारी हो सकता है।

[१७] शब्दार्थ बगा=बगुला; ढंढोरै=ढूँढ़े; माछरी=मछली।

भावार्थ एक ही स्थान (मान सरोवर) में रहते हुए भी बगुला अपनी प्रकृति के अनुसार मछली ही ढूँढ़ता है किन्तु हंस मोती चुगता है। (इसी प्रकार संसार में भी दुष्ट लोग अपनी क्रिया नहीं छोड़ते)।

शब्दार्थ पतियाइ=विश्वास करे; काँकर=कंकड़।

[१८] भावार्थ जो हंस मोती ही चुगता है वह कंकड़ों से कैसे सन्तोष करे। वह उसे पाने के लिये चोंच नहीं बढ़ाता (सिर नहीं झुकाता)। जब मोती ही प्राप्त होता है तभी उसे ग्रहण करता है।

[१९] भावार्थ शरीरधारियों के लिये दंड अनिवार्य है। विद्यावान अपने ज्ञान से परिताप अनुभव करता है और मूर्ख उसे अज्ञानतावश रो-रोकर भोगता है।

[२०] शब्दार्थ आपा=सत्ता, अस्तित्व।

भावार्थ ऐसे वचन बोलना चाहिये, जो कि मन के विकारों को मुक्त करे और उससे औरों को सुख पहुँचे और स्वतः भी सन्तोष का अनुभव करे।

[२१] शब्दार्थ बनराई=वनराज; वृक्ष समूह।

भावार्थ पृथ्वी सब के चलने का भार ग्रहण करती है। वृक्ष समूह काट-छाँट सह लेता है और सज्जन लोग दुष्टों के दुर्वचन सहा करते हैं। इनके अतिरिक्त और किसी मे इतनी सहन-शीलता नहीं।

[२२] भावार्थ बाण के समान दुष्टों के कर्कश वचन को सज्जन लोग टाल देते हैं (सह लेते हैं) किन्तु उनका उसी प्रकार कुछ नहीं बिगड़ता जिस प्रकार समुद्र में बिजली गिरने से समुद्र की कोई हानि नहीं होती वरन् बिजली ही प्रभाव हीन हो जाती है।

[२३] शब्दार्थ जाचक=भिखारी; हरखि=खुश होकर; द्रुम=वृक्ष; पल्लव=पत्ते; नव=नये।

भावार्थ वसंत ऋतु मे मानों कुछ माँगा और वृक्षों ने हर्षित होकर अपने पत्ते दे डाले (वसंत के पूर्व पतझड़ होता है) किन्तु इसके बाद ही उन वृक्षों मे नये-नये कोमल पत्ते निकल आये अतः स्पष्ट है कि देना निष्फल नहीं होता।

[२४] शब्दार्थ=दाम=धन।

भावार्थ विद्यावान लोग, जब नाव मे पानी भर जाता है, तब उसे संकट का कारण जानकर बाहर फेंक देते हैं। उसी प्रकार घर मे जब धन-वृद्धि हो तब भी उसे वितरित कर देना चाहिए; यही विद्यावानो का काम है।

[२५] शब्दार्थ साईं=प्रभु।

भावार्थ प्रभु मुझे केवल उतने से ही प्रयोजन है जितने से परिवार का भरण-पोषण हो जाय। ताकि मेरी भी क्षुधा मिट सके और घर पर आये हुए साधु की भी क्षुधा-तृप्ति कर सकूँ।

[२६] शब्दार्थ उदर=पेट।

भावार्थ साधु धन एकत्रित करके नहीं रखता। केवल पेट की पूर्ति के लायक रखता है। आखिर सब की चिन्ता करने वाला ईश्वर सभी जगह पर है। जब आवश्यकता पड़ती है तब वे दे देते हैं।

[२७] शब्दार्थ गो=गाय; गज=हाथी; बाजि=घोड़ा।

भावार्थ- संसार मे गाय घोड़े और हाथी इत्यादि अनेक प्रकार की सम्पत्तियाँ है, किन्तु जब सब से बढ़कर सम्पत्ति संतोष मिल जाता है तब ये सब धूल के समान तुच्छ प्रतीत होती हैं।

[२८] भावार्थ अरे मन! जल्दी मे कोई काम नहीं होता। धीरे-धीरे सब कुछ होता है। माली पौधों और वृक्षों में हमेशा पानी देता है किन्तु वृक्षो मे फल, ऋतु आने पर ही लगते हैं, उससे पहले नहीं।

[२९] शब्दार्थ पतीजई=विश्वास करते, मदिरा=शराब; गोरस=दूध।

भावार्थ सत्य पर कोई एकाएक विश्वास नहीं करता और झूठ को सब ही सत्य मान लेते हैं। इसीलिये दूध गली-गली मे बिकने के लिये फिरता है। किन्तु शराब जैसी अवान्छनीय चीज घर बैठे कलवार मे बिकती है, लोग उसे लेने के लिये लट्टू होकर दौड़ते हैं।

[३०] शब्दार्थ जोबन=यौवन।

भावार्थ कबीरदास जी कहते हैं कि रे मन! क्षणिक यौवन का घमण्ड मत कर। वसंत ऋतु मे केवल कुछ दिनों के लिये पलास में सुन्दर फूल लगते है, उसके बाद पुनः पुष्पहीन। अतः आकर्षण हीन पलास खड़ा रहता है।

[३१] शब्दार्थ सुतहिं=पुत्रों को; आन=अन्य; नीर=जल; मम=मेरे; चितदेइ=इच्छा करो।

भावार्थ चातक (जो कि स्वाति नक्षत्र में बरसे पानी के अतिरिक्त और कोई जल ग्रहण नहीं करता) अपने बाल चातक को यह शिक्षा देता है कि तुम अन्य जल (स्वाति जल के अतिरिक्त) मत ग्रहण करना। हमारे वंश का यही स्वभाव है कि स्वाति जल और केवल स्वाति जल ही की इच्छा करते हैं।

[३२] शब्दार्थ पपीहरा=पपीहा; कै=अथवा; सुरपति=इन्द्र।

भावार्थ स्वाभिमानी पपीहा (इसीलिये "ऊँची जाति" कहा है) पृथ्वी पर बरसे जल को कभी ग्रहण नहीं करता। या तो इन्द्र की परीक्षा करता है (कि वह उससे संतुष्ट कर सकता है अथवा नहीं) या शरीर को दुःख पहुँचाकर प्राण त्याग देता है।

[३३] भावार्थ दूसरे की आशा छोड़कर अपने बाहुबल पर भरोसा रखना चाहिये। जिसके समीप नदी प्रवाहित होती हो, वह क्यों प्यासा मरे!

[३४] भावार्थ साधु कहाना अत्यन्त कठिन है। वह ऊँचे खजूर पेड़ के समान है जो यदि चढ़ गया तो मधुर रस पान करता है यदि गिर पड़ा तो नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। अर्थात् साधु की साधना अत्यन्त कठिन है यदि उसे निबाह लिया तो सिद्धि फल का भागी होता है अन्यथा मन के विचलित होने से पतित होकर नष्ट हो जाता है, वह कहीं का नही रहता।

[३५] शब्दार्थ लखि=देख पड़ते है; ताल=तालाब; वारि=दूध; बक=बगुला, उघरे=खुले।

भावार्थ हंस और बगुला दोनों का रंग (श्वेत) एक ही दिखाई पड़ता है, और वे एक ही जलाशय में विचरण करते हैं; किन्तु मिले हुए दूध और पानी के सामने आने पर हंस पहिचाने जाते हैं। (क्योंकि कहा जाता है कि दूध पीकर पानी अलग छोड़ देता है), और उस समय बगुला का भेद (उसकी असमर्थता के कारण) खुल जाता है। अर्थात् अवसर आने पर ऊपर से एक समान दिखने वालों की परीक्षा हो जाती है।

[३६] भावार्थ कबीरदास जी कहते हैं कि वही दिन अच्छा है, जिस दिन साधु-संतों से मिलन होता है। उनसे गले मिल-कर (मिलन कर) शरीर का पाप नष्ट हो जाता है।

[३७] शब्दार्थ जगाती=कर (टैक्स) वसूल करने वाला।

भावार्थ इस संसार में निःशंक होकर अपना कार्य करो। तुम्हें कोई रोक नहीं सकता। संसार रूपी सरिता के उस पार खड़ा हुआ कर वसूल करने वाला (यमराज) भी क्या कर सकता है, यदि तुम्हारे सिर पर पाप का बोझ नहीं है।

टीप कर केवल बोझा (कोई सामान) ले जाने वालों से ही लिया जाता है।

सूरदास

[१] शब्दार्थ अविगत=भगवान, अतर्गत=हृदय में; अमित=असीमित, तोष=संतोष, अगोचर=अदृष्ट; जुगुति=युक्ति, निरालंब=निराधार; चकृत=चकित, स्तंभित।

भावार्थ भगवान की गति नहीं समझी जा सकती। जिस प्रकार गूँगा मीठे फल के मधुर रस का अनुभव हृदय में करता है; वाहर व्यक्त नहीं कर सकता, जो सव को सदैव असीमित संतोष प्रदान कर सके वही सबसे अच्छा स्वाद है। मन और वाचा की पहुँच तथा दृष्टि से वाहर (उस भगवान को) वही जान सकता है जो उनको प्राप्त कर लेता है। युक्तिहीन हृदय बिना किसी प्रकार से चकित हुए निराकार निर्गुण ब्रह्म को पाने के लिये दौड़ता है। (निरा कार भगवान को) सव प्रकार बुद्धि की पहुँच से वाहर (अगम्य) जान कर ही सूरदास जी कहते हैं कि वे साकार प्रभु की लीला के गीत गाते हैं।

[२] शब्दार्थ अनत=दूसरी जगह; कूप=कुँआ; मधुकर=भौंरा; अंबुज=कमल;

भावार्थ मेरा मन (कृष्ण को छोड़) दूसरी जगह कहीं शान्ति नहीं पा सकता। जिस प्रकार (पानी पर चलते हुए) जहाज पर रहने वाला पक्षी जहाज से उड़कर भी कोई स्थल खंड (उपयुक्त आश्रय) न पाकर फिर से जहाज पर आ वैठता है। सर्वश्रेष्ठ विष्णु (कृष्ण) को छोड़ कर कौन अन्य देवों की आराधना करे। परम फलदायिनी गङ्गा को छोड़ कर मूर्ख प्यासा ही कुँआ खुदवावेगा। जिस भ्रमर ने कमल के मधुर रस का पान कर लिया हो वह भला करील का (कडुवा) रस क्यों चखने चला ? सूरदास जी कहते हैं कि कामधेनु के समान सव इच्छा पूर्ण करनेवाले भगवान (कृष्ण) को छोड़ कर ऐसा कौन है जो उनके मुकाबिले मे वकरी के समान कम महत्व वाले देवताओ से आशा करे।

[३] शब्दार्थ वल=वलराम; काढ़त=सँवारत; गुँहत=

गूँथता; ओछत=पोछता ; भुँई=जमीन ; पचि-पचि=बार-बार; जोरी=जोड़ी ।

भावार्थ (कृष्ण जी कहते हैं कि) हे माँ! मेरी चोटी कब बढ़ेगी। कितने दिन मुझे दूध पीते हो गये किन्तु यह आज भी छोटी की छोटी है। तू जो कहती थी कि यह बलराम की वेणी के समान लम्बी और मोटी हो जावेगी; नहाते, पोंछते, संवारते और गूँथते समय यह सर्पिणी सी जमीन तक लोटेगी। बार-बार कच्चा दूध ही पिलाती है, मक्खन रोटी कभी नहीं देती। 'सूरदास' जी कहते हैं कि हे श्याम! तुम दोनों भाइयों (कृष्ण और बलराम) की जोड़ी दीर्घजीवी हो।

[४] शब्दार्थ तनक-तनक=छोटे छोटे; चारन=चराने; घामहिं माँझ=धूप में; तेरी सौं=तुम्हारी सौगंध;

भावार्थ बिलकुल स्पष्ट है।

[५] शब्दार्थ विरावत= एकत्रित कराते हैं; पत्याहु=विश्वास करना; सौंह=शपथ; पठवति=भेजती हैं; बहलाई=बहला करके।

भावार्थ हे माँ! मैं अब गाय नहीं चराऊँगा। सब ग्वाले मुझसे अपनी गाये एकत्रित कराते हैं जिससे मेरे पैर दुखते हैं। यदि तू विश्वास नही करती तो अपनी सौगन्द दिला कर बलदाऊ से पूछ ले। (यशोदा कहती हैं) कि मैं अपने लड़के को इस लिये भेजती हूँ कि वह वहाँ जाकर अपना मन बहला आवे। 'सूरदास' जी कहते है कि मेरे नन्हें से बच्चे को पैदल चला-चला कर मारे डालते हैं।

[६] शब्दार्थ खिझावौ=चिढ़ाया; मोसों=मुझसे; जायो=उत्पन्न किया; तात=पिता; पुनि-पुनि=बार-बार; सिखै=सिखा देना; रिस=क्रोध; चवाई=चुगलखोर।

भावार्थ- (श्री कृष्ण जी कहते हैं कि) हे माँ! मुझे बलदाऊ ने बहुत चिढ़ाया। वे मुझसे कहते हैं कि यशोदा ने तुम्हें कब जन्म दिया है; तुम तो मूल्य से खरीदे गये हो। हे माँ! मैं क्या बताऊँ, इसी क्रोध के कारण मैं खेलने नहीं जाता। वे बार बार कहते हैं कि कौन तुम्हारी माता है और कौन तुम्हारे पिता हैं। (वे कहते हैं कि) नन्द बाबा गोरे हैं और यशोदा माँ गोरी हैं किन्तु तुम्हारा शरीर क्यों काला है। (इस प्रकार) चुटकी बजा बजा कर सब ग्वाले हँसते हैं और उन्हें बलदाऊ सिखा देते हैं। (कृष्ण कहते है कि) तू मुझे ही दण्ड देना जानती है, बलदाऊ को कभी नही डाँटती। कृष्ण के क्रोध पूर्ण मुख को देखकर यशोदा मन ही मन प्रसन्न होती है। यशोदा कृष्ण को सम्बोधित करके कहती है कि सुनो कृष्ण, बलदाऊ चुगलखोर है; वह तो जन्म से ही धूर्त है। 'सूरदास' जी कहते हैं कि (यशोदा कहती हैं।) मै अपनी गायो की सौगन्द खाकर कहती हूँ कि तुम मेरे पुत्र हो और मै तुम्हारी माता हूँ।

[७] शब्दार्थ भलो हियो=सुन्दर हृदय, ऊखल=ओखली; सुत=पुत्र, इति जड़ताई=इतनी मूर्खता; लोचन=नेत्र; निगम=अगम्य वेद; करतल=ताली सुर=देव,

भावार्थ (गोपियां कहती हैं) हे मैय्या यशोदा! तेरा भी अजब हृदय है)। जो सम्पति देवताओ और मनुष्यो को इतनी दुर्लभ है कि स्वप्न मे भी दिखलाई नही देती, उस कृष्ण को माखन खाने के कारण तूने ओखली मे बाँध लिया है। इसीलिये घर बैठे यह सम्पत्ति पाकर गर्व सें भूल रही है। पहले तो किसी के पुत्र का रोना सुन दौड़ कर हृदय से लगा लेती थी किन्तु घर के बच्चे के लिये क्यो इतनी निर्दयता प्रकट कर रही है। बार बार कुँवर कन्हैया आँखों मे आँसू भर भरकर

रो रहे हैं। क्या करूँ बलिहारी है तेरी, शपथ दिला कर छोड़ देती। जो मूर्ति जल और थल में समान रूप से व्यापक है, जिसे वेद खोज कर भी न पा सके उसे यशोदा अपने आँगन मे ताली बजा बजाकर नचाती है। जो देवताओं के रक्षक और दैत्यों के विनाश कर्ता हैं, तीनों लोक जिससे डरता है। 'सूरदास' जी कहते हैं 'कि भगवान की यह विचित्र लीला है कि वेदो ने "नेति नेति" की धुन लगाई (नेति नेति कह वेद पुकारा तुलसी)।

[८] शब्दार्थ भोर=सवेरा; पठायो=भेजा; कहिबिधि=किस प्रकार; भोरी=भोली; पतियायो=विश्वास कर लिया; जिय=हृदय; जायो==पुत्र; लकुटि=लकड़ी।

भावार्थ हे माँ। मैंने माखन नहीं खाये। सुबह होते ही तुमने मुझे गाय चराने के लिये मधुबन भेज दिया था। दिनभर वंशीवट में भटकता हुआ शाम होने पर घर आया हूँ। मैं छोटी बाहों वाला बालक हूँ, दूर टँगीहुई सींक किस प्रकार पा सकता था। सब ग्वाल बाल मुझसे बैर करते हैं, (इसलिये जबरदस्ती मेरे मुँह मे (मक्खन) लपेट दिया है। माँ! तू हृदय की अत्यंत भोली है जो इन की बतायी बात पर विश्वास कर लिया। (कदाचित) पराया पुत्र जान कर तेरे हृदय मे कुछ भेद भावपैदा हो गया है। अब अपनी लकड़ी और कम्बल यह लो, तुमने मुझे अत्यंत तंग किया है। 'सूरदास' जी कहते हैं कि यशोदा ने हँस कर कृष्ण को हृदय और गले से लगा लिया।

[७] शब्दार्थ ढीठ=निडर; लकुट=लकड़ी; त्रासैं=डराते हैं; गुणनि गर्य=गुणातीत; कटि=कमर; निरखि=देख कर; लुब्धे=आकर्षित।

भावार्थ मेरी आँखें अत्यंत निडर हो गई हैं। लज्जा रूपी लकड़ी दिखाकर डराये जाने पर भी ये नहीं (दबती)। पलक रूपी किवाड़ को तोड़ कर घूँघट के आवरण को हटा दिया और सकल गुणागार (लीलामय) कृष्ण से अति आतुरता से मिल गईं। जो सिर पर मुकुट, कानो मे कुंडल और कमर में पीताम्बर धारण किये हुए अति सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। उस श्याम की छवि को देखकर 'सूरदास' जी कहते हैं कि वे आकर्षित हो गईं।

[१०] शब्दार्थ काहु=कोई, लह्यो=पाया; दह्यो=जलाया; अलिसुत=बाल भ्रमर; जलसुत=कमल, सम्पुट=फूलों के दल के बीच का वह समूह जिसमे रिक्त स्थान हो। सारङ्ग=मृग; नाद=बाजे की आवाज।

भावार्थ प्रेम कर कोई भी सुख न पा सका। पतिङ्ग ने दीप शिखा से प्रेम कर अपना शरीर जला डाला, प्राण विसर्जित कर दिया। कमल से प्रेम कर रात्रि मे भौंरा पुष्प के भीतर फँस गया। हरिण ने जो संगीत से प्रेम किया उसके परिणाम स्वरूप शिकारी के बाण शरीर पर झेलने पड़े। हमने कृष्ण से जो प्रेम किया तो विदा के समय एक शब्द भी न कहा। 'सूरदास' जी कहते हैं (कि गोपियाँ कह रही है) कि कृष्ण के वियोग के दुःख से दोनो नेत्रों से अश्रुपात हो रहे हैं।

टीप पतङ्ग दीप से लव लगाकर अपने प्राणों की आहुति कर देता है। हरिण को संगीत से इतना प्रेम होता है कि वह उसके नाद से चौकड़ियाँ भरना भूल जाता है।

[११] शब्दार्थ अनाथ=निराधार, असहाय; सुनियत=सुना जाता है; सर=तालाब; मीन=मछली; बापुरी=बेचारी;

निनारे=अलग; सुधानिधि=चन्द्रमा; जोइ=जोहते; तकते; मृत कहुँ=मरे को भी।

भावार्थ हमारी आँखें अब असहाय हो गईं हे सखि! सुना जाता है कि कृष्ण यहाँ से दूर चले गये। वे तालाब के जल के समान हैं और हम बेचारी मछली हैं, हम किस भाँति उनसे अलग रह सकती हैं। हम चातक हैं तो श्याम मेघ हैं, हम चकोर हैं तो आप का मुख चन्द्रमा है (अर्थात् तुमसे विलग हम नहीं रह सकतीं)। मधुबन से बसते हुए उनके दर्शन की आशा से उनकी बाट जोहते जोहते हमारे नेत्र थक गये। 'सूरदास' जी कहते हैं (कि गोपियों का वचन है कि) प्रिय कृष्ण ने ऐसा किया कि मृत को फिर से मार रहे हैं।

[१२] शब्दार्थ अगोचर=अश्रुत; वपु=शरीर; चेतहिं=जीव; लोचन=आँख;

भावार्थ मैं कहाँ तक उनकी बड़ाई करूँ। जो अपार हैं, अगम्य हैं और मन के लिये अदृश्य हैं, वहाँ न जा। जिसका न रूप है, न रंग है, न वर्ण है और न शरीर ही है तथा साथी और सम्बन्धी भी नहीं है। इस निर्गुण (निराकार) से हे सखी! सदा प्रेम इस प्रकार निभ सकेगा? जल के अभाव मे तरङ्गें नहीं उठ सकतीं। दीवाल (आधार) के बिना चित्र नहीं बनाया जा सकता और न बिना चेतन के चतुराई ही आ सकती। उधो ने आकर यह सुना दिया है कि इस ब्रज से अब उन्हें कुछ प्रेम नहीं किन्तु मन मे उनका रूप माधुर्य समाया हुआ है और अंग प्रति अंग में उलझ गया है। 'सूरदास' जी कहते हैं (गोपियाँ कह रही हैं) कि प्रिय कृष्ण के कमल दल की भाँति सुन्दर नेत्र अत्यंत सुखदाई हैं।

[१३] शब्दार्थ हंससुता=यमुना; कगरी=किनारा, तट;

सुरभी=गाय; खरिक=गाय इकट्ठा होने का स्थान; गहिगहि=पकड़ पकड़ कर; कंचन=स्वर्ण; मुकुताहल=मोती; सुरति=स्मृति; उमगत=उत्साहित,

भावार्थ श्री कृष्ण उद्धव से कहते हैं कि मुझसे व्रज भूला नहीं जाता। यमुना का वह मनोरम तट और कुंजों की शीतल छाया, उन गायों और बछड़ों का खरिक (गायों के इकट्ठा होने का स्थान) में दुहाने जाना तथा दोहनी, हाथ पकड़-पकड़ कर (खुशी से) शोर मचाते हुए ग्वाल-बाल, इस मणि-मुक्ताओं से भरी हुई स्वर्ण नगरी मथुरा मे, जब याद आते हैं, तब उस सुख-के लिए हृदय उत्साहित हो जाता है और देह की सुधि नहीं रहती। मैंने अनेक प्रकार की लीलाएँ कीं, जिन्हे (बाबा) नंद तथा (माता) यशोदा ने निबाहा। सूरदास जी कहते हैं कि ऐसा कहकर प्रभु मौन हो गये और मन ही मन पछताने लगे।

[१४] शब्दार्थ हरि विमुख=कृष्ण का विरोधी; कुबुधि=दुर्बुद्धि; पय=दूध; भुजंग=सर्प; कागहि=कौवा; स्वान=कुत्ता; खर=गधा; अगरजा=चंदन; मरकट=बन्दर; गज=हाथी; सरिता=नदी; खहि=धूल; अग=अंग; पाहन=पत्थर; रीतो=खाली; निषंग=तरकस; कामरि=कामल;

भावार्थ हे मेरे मन! भगवान (कृष्ण) के विमुख लोगों की संगति छोड़ दे क्योंकि उनके संसर्ग से दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है और ईश्वर (कृष्ण) भजन मे बाधा उपस्थित होती है। सर्प को दूध पिलाने से क्या होता है, वह अपना विष कभी नहीं छोड़ता। कौवा को कपूर खिलाने से क्या होता है, और कुत्ते के गंगा-स्नान कराने से क्या होता है (क्योंकि वे दुष्कर्म करना तथा गंदी वस्तु खाना नहीं भूलते)। गदहे को सुगंधित चंदनादि द्रव्य के लेप लगाने से कोई लाभ नहीं क्योंकि वह

धूल में लोटना नहीं छोड़ता। बंदर को सुन्दर आभूषणों से आभूषित करना व्यर्थ है (क्योंकि उसके लिये उसका कोई मूल्य नहीं है और उसे उतार कर फेंक देगा)। हाथी को नदी मे नहलाने से कोई लाभ नहीं क्योंकि वह फिर धूल अंग मे चढ़ा लेता है। पाषाण स्वरूप पापियो पर बाण सम तीक्ष्ण ज्ञान का भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। चाहे तुम तरकश रूपी ज्ञान भाण्डार ही क्यो न खाली कर दो। 'सूरदास जी' कहते है कि दुष्ट लोग काले कम्बल के समान है जिन पर कोई दूसरा रंग चढ़ ही नही सकता। (उनकी कालिमा के सम्मुख सद्भाव कर प्रभाव फीका पड़ जाता है।)

[१५] शब्दार्थ नाऊँ=नाम; विप्र=ब्राह्मण; पखारे=धोये; अंक माल दै=हृदय मे आलिंगन करके; अर्धांङ्गिनी=रुक्मिणी; बूझति=पूछती, हितू=प्रिय; पाँऊँ=पैर; पटसार=पाठशाला।

भावार्थ मै ऐसे प्रेम पर न्योछावर जाऊँ। सुदामा का नाम सुनते ही कृष्ण सिंहासन त्याग कर मिलने दौड़ पड़े। गुरुभाई और ब्राह्मण जानकर अपने हाथो से उसके चरण धोये। प्रेम से गले लगाकर कुशल क्षेम पूछकर अर्ध-आसन पर बैठा दिया। (इस पर) रुक्मिणी, कृष्ण से पूछती हैं कि ये तुम्हारे कैसे मित्र है, जिन्हे मैं अत्यंत दुर्बल, क्षीण और गरीब पाती हूँ? वे कहाँ से पधारे है? (कृष्ण कहते हैं) हम और सुदामा दोनों ने एक साथ संदीपन गुरु की पाठशाला मे शिक्षा पायी है। 'सूरदास' जी कहते हैं कि श्याम को बात कौन कहे, जिनकी भक्तों पर अपार कृपा है।

[१६] भावार्थ अत्यंत स्पष्ट है।

मीरा

[१] शब्दार्थ अधर=ओंठ; सुधारस=अमृत; राजत=शोभित होती हैं; उर=हृदय; छुद्र घंटिका=छोटे छोटे घुँघरू; कटितट=कमर में; नूपुर=पैजनी; भक्त वच्छल=भक्त वत्सल।

भावार्थ मेरी आँखों में कृष्ण की मूर्ति समायी रहे। उनका साँवला रूप, बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखो वाली मूर्ति मन को मोहित करने वाली है। मधुर ओठो पर वंशी शोभित होती रहती है तथा वक्षस्थल पर वैजयन्ती की माला विराजती है। उनकी कमर मे छोटे-छोटे घुँघरुओ की करधनी है और पैरो मे विराजने वाली पैजनी से मधुर शब्द निकलते हैं। मीरा कहती हैं कि भगवान कृष्ण सतों को सुख देने वाले तथा भक्तो के प्रिय हैं!

[२] शब्दार्थ सकल=सम्पूर्ण; दधि=दही; घृत=घी; छोई=छाँछ।

भावार्थ मेरे गोवर्धनधारी कृष्ण के सिवाय मेरा अब कोई दूसरा नहीं। हे सज्जन! जो सारे संसार मे व्याप्त है वह उसके सिवाय अन्य कोई नहीं है। भाई-बन्धु तथा सगे सम्बन्धियो का मैंने त्याग किया। साधुओ के साथ बैठ-बैठकर मैंने लोक-मर्यादा की अवहेलना की। संसार की गति को देखकर मुझे दुःख हुआ और भक्तो की सात्विकता को देख मैं प्रसन्न हुई। मैंने अपने आँसुओ से सींच-सींच कृष्ण-प्रेम की लता को पल्लवित किया।

दही को मथकर जिस प्रकार घी निकाल लिया जाता है

उसी प्रकार संसार से सार तत्व कृष्ण को मैंने अपना लिया और बाकी को छाँछ के समान छोड़ दिया। राणा (मीरा के पति) ने जहर का प्याला भेजा जिसे पीकर मैं मग्न हो गई। अब तो प्रेम की बात फैल गई है और सब जानने लगे हैं। मीरा कहती हैं, कि मेरी लगन तो राम (कृष्ण) के साथ लगी है, चाहे अब कुछ भी परिणाम हो।

टीप मीरा को मन्दिर मे नाचती गाती देख राणा ने विष का प्याला भेजा था जिसे पीकर भी मीरा भगवान की कृपा से बच गई।

[३] शब्दार्थ बार=समय; विरछ=वृक्ष, विषय=वासनी; ओखेधार=छिछला प्रवाह; सूरत=भगवान की मूर्ति; बेगि=शीघ्र; ते=वे।

भावार्थ ऐसा (मानव) जन्म बार-बार नहीं होता। जाने किस पुण्य के प्रताप से यह मनुष्य शरीर मिला है जो क्षण-क्षण विकसित होता है, (साथ-साथ) उसकी आयु घटती जाती है, समय बीतते देर नहीं लगती। जिस प्रकार वृक्ष के पत्ते एक बार टूटकर फिर से नहीं लग सकते उसी प्रकार मानव शरीर से विलग होकर पुनः उसे पाना असंभव है। संसार-सागर दुस्तर है उसमे वासना संकीर्ण प्रवाह के समान है। जो मनुष्य भगवान की भक्ति की नाव पर चलते हैं वे शीघ्र ही पार हो जाते हैं। साधु-सन्त और महन्त यही बताते चलते हैं। कृष्ण भक्त मीरा कहती हैं कि जीवन चार दिनों का है।

[४] शब्दार्थ परसि=स्पर्श कर; सुभग=सुन्दर; त्रिविध ज्वाला=तीन प्रकार के दुःख (आधि दैविक, आधि भौतिक और आध्यात्मिक); घरनी=स्त्री; मघवा=इन्द्र।

भावार्थ अरे मन! ईश्वर के चरणों की भक्ति कर। उनके चरण-कमल सुन्दर, कोमल और शीतल हैं तथा तीनों प्रकार की विपत्तियों के नाश करने वाले हैं। जिन चरणों की भक्ति करके प्रह्लाद इन्द्रासन का अधिकारी हो गया, जिन चरणों ने ध्रुव को अपनी शरण लेकर अटल बना दिया, जिनके चरणों की भक्ति के द्वारा दरिद्र सुदामा सिर से पैर तक श्री-सम्पन्न हो गया तथा दो लोक का स्वामी भी बन गया, जिन चरणों के स्पर्श करने से गौतम की पत्नी का उद्धार हो गया, जिन चरणों ने कालिया नाग का मानमर्दन किया था, तथा गोपलीला की थी, गोवर्धन पर्वत को उठाकर इन्द्र का गर्व चूर किया था, भक्त मीरा करती हैं कि कृष्ण के वे ही चरण अगम्य संसार से पार लगा देने वाले हैं, मोक्ष दिला देने वाले हैं।

[५] शब्दार्थ सीर=शिर; हीर=हीरा: नागर=चतुर।

भावार्थ अत्यन्त स्पष्ट है।

[६] शब्दार्थ गुजरिया=ग्वालन; टोना=जादू; छोना=पुत्र; सलोना=सुन्दर।

भावार्थ इस ब्रज में कुछ अजीब जादू मैंने देखा। सिर में दही की मटकी लेकर ग्वालन चली; रास्ते में बाबा नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण ज्योंहीं मिलते हैं, त्योंहीं इतनी प्रेम-विभोर हो जाती है कि वह 'दही लो' कहना भूल जाती है और कहने लगती है, "ले लेहु री कोइ श्याम सलोना" (कोई सुन्दर श्याम ले लो) वृन्दावन की कुञ्जों और गलियों में मनमोहन श्याम ने प्रेम का जादू कर दिया है। मीरा कहती है कि उनके चतुर कृष्ण सुन्दर, श्यामल एवं रसिक हैं।

[७] शब्दार्थ म्हारा=हमारा; ओलगिया (शुद्ध रूप

ओलिया)=वैद्य, साधु; मंगल गाया=मंगल गीत गाया; घन की धुनि=मेघ का गर्जन; भवकादरद=संसार का दुःख; नसाया =नाश हो गया, मिट गया।

भावार्थ हमारे वैद्य घर आ गये। तन की पीड़ा मिट गई, सुख प्राप्त हुआ और हिलमिलकर मंगल गीत गाये। बादल की गर्जना सुनकर मोर आनन्द-विभोर हो गया इसी विधि घनश्याम को देखकर मुझे भी आनन्द प्राप्त हुआ। अपने प्रभु से मिलकर मैं अत्यन्त आनन्दित हो गई और उसने सांसारिक दुःख से उद्धार कर लिया। चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी जिस प्रकार हर्ष से फूल उठती है, उसी प्रकार मेरा भी शरीर हर्षित हो गया। जो ईश्वर अपने सब भक्तों के कार्य करते हैं, मैंने उन्हीं प्रभु को प्राप्त कर लिया। भक्त मीरा कहती हैं कि, मेरे सब दुःख दर्द तुम्हें देखकर दूर हो गये और मैं तृप्त हो गई।

[८] शब्दार्थ अविनासी=शाश्वत ; धरण-गगन=पृथ्वी और आकाश, चहर की बाजी=बाजार का पसरा, करवत= लोग मोक्ष पाने की अभिलाषा से काशी में जाकर अपना शरीर चिरवाया करते थे उसी को करवत लेना कहते है।

भावार्थ रे मन! अविनश्वर श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-कमल की भक्ति कर। इस संसार मे जितनी चीजें दिखाई देती हैं, सब नाशवान हैं। इस स्थूल शरीर का गर्व नही करना चाहिये; यह तो (मृत्यु के पश्चात्) मिट्टी मे मिल जाने वाला है। यह ससार बाजार के समान है जो दिन डूबते ही बन्द हो जाने वाला है। क्या हुआ यदि तीर्थयात्रा की और व्रत धारण किया, काशी में जाकर करवत लिया, गेरुवा वस्त्र पहनकर घर छोड़ संन्यास धारण कर लिया, यदि योगी होकर भी

युक्ति नहीं जानी तो बार-बार जन्म लेना पड़ता है। हे श्याम! तुम्हारी दासी मैं अबला हाथ जोड़कर विनती करती हूँ (मीरा कहती है) कि इस जन्म-मरण के बन्धन से मुझे मुक्ति दो!

बिहारी

[१] शब्दार्थ मंद समीर=धीरे धीरे बहने बहने वाली हवा; अजौं=आज भी; ।

भावार्थ आज भी उस यमुना के तट पर; जहाँ घने कुञ्जों की सुखद छाया है, तथा धीरे धीरे बहनेवाली ठंडी हवा है, जाने की इच्छा होती है।

[२] शब्दार्थ लख्यो=देखा; सुभग-सिरमौर=भाग्यवानों में शिरोमणि (यहां पर रूपवानो में शिरोमणि); छिन=थोड़ी देर के लिये; ठौर=स्थान; अजहुँ दगनि गहि रहत=अब भी आँखो को पकड़ लेती है अर्थात् टकटकी बाँधकर देखती हैं।

भावार्थ जहाँ जहाँ उस अत्यन्त सुन्दर, श्याम (कृष्ण) को देखा है, उस स्थान को आज भी, उनकी अनुपस्थिति मे भी, मेरे नेत्र टकटकी बाध कर बड़ी देर तक देखा करते है।

[३] शब्दार्थ पीत पट=पीताम्बर; सलोना=सुन्दर; गात=शरीर; शैल=पर्वत; आतप=धूप; ।

भावार्थ पीताम्बर ओढ़े हुए श्रीकृष्णजी का सुन्दर श्याम शरीर ऐसा शोभा देता है, मानो नीलम के पहाड़ पर प्रातःकाल की धूप पड़ रही है।

विशेष १ सखी नायक की अद्भुत शोभा का वर्णन करके नायिका को मिलाना चाहती है।

२ प्रभात-सूर्य की प्रभा यद्यपि अन्य पहाड़ों पर भी पड़ती है पर जैसी शोभा वह नीलमणि पर्वत पर पड़ने से पाती है, वैसी अन्यत्र नहीं।

अलंकार यहाँ नीलमणि गिरि और आतप की उत्प्रेक्षा की गई है। उत्तरार्ध मे 'पकार' की आवृति से वृत्यानुप्रास भी है।

[४] शब्दार्थ अधर=ओंठ, दीठि=दृष्टि; पट=पीताम्बर; हरित=हरा;

भावार्थ श्री कृष्ण के ओंठ पर वंशी रखते ही उस बंशी पर ओठ की (लाल रंग की) दृष्टि की सफेद (काले और लाल रंग की) और पीताम्बर की (पीली) छटा पड़ती है तब हरे बांस की वंशी इन्द्रधनुष के रंग की हो जाती है।

विशेष इन्द्रधनुष में प्रधानतया चार रंग दृष्टिगोचर होते हैं। हरा, पीला, लाल और नीला। हरे रंग की बाँसुरी पर पीला, लाल तथा नीली-आँखो का प्रतिबिम्ब पड़ने से सब रंग आ जाते हैं।

अलंकार 'इन्द्रधनुष सी होति' मे उपमा है। 'बांस की वांसुरी' में यमक।

[५] शब्दार्थ छबिहिं=तस्वीर, चित्र, गरूर=घमंड; चितेरा=चित्रकार; कूर=मूर्ख, बेवकूफ।

भावार्थ (सखी नायिका के रूप की प्रशंसा करती हुई नायक से कहती है कि) जिसकी तस्वीर बनाने के लिये बढ़कर अहंकार युक्त होन्हों, ससार के कितने मगरूर चित्रकार बेवकूफ नहीं बने (अर्थात् बहुत चित्रकार बेवकूफ बन गये)।

विशेष १ चित्रकारों से चित्र न बनने का कारण नायिका का रूपाधिक्य है। उसे देखकर कोई स्तम्भित होता; किसी का हाथ ही रुक जाता, किसी को कंप होता तो चित्र-रेखाएँ विकृत हो जातीं; किसी को पसीना निकल आता तो चित्र के रंगों में पड़कर फीका कर देता।

२ अथवा वयस्संधि मुग्धा नायिका है, अतः उसका रूप प्रतिक्षण बदलता और बढ़ता है।

[६] शब्दार्थ अनुरागी=प्रेमी; गति=दशा; श्याम रंग=१ काला रङ्ग, २ कृष्ण प्रेम; उज्जवल=१ निर्मल २ प्रेममय;

विशेष इस दोहे का अर्थ शृङ्गार के अतिरिक्त शांतरस में भी लगता है।

शांतरस का भावार्थ इस प्रेमी की दशा को कोई नहीं समझ सकता या ज्यों-ज्यों कृष्ण के रंग में डूबता है (श्याम का ध्यान करता है) त्यों-त्यों निर्मल होता है।

शृंगार का भावार्थ (नायिका सखी से कहती है कि सखी) मेरे इस प्रेमी हृदय की दशा को कोई नहीं समझता। ज्यों-ज्यों यह चित्त कृष्ण के प्रेम में लीन होता है त्यों-त्यों (व्याकुल न होकर) अधिकाधिक प्रेम मग्न होता जाता है।

अलंकार श्लेष।

[७] शब्दार्थ सांकर=संकल, जंजीर; कपाट=किवाड़; बाट=रास्ता।

भावार्थ (नायिका सखी से स्वप्न-दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि, मैं रात को रोज कृष्ण को देखती हूँ कि वे मेरे पास आये हैं और) जब मैं जगकर देखती हूँ तो पाती हूँ

कि किवाड़ों मे वैसी ही जंजीर लगी है, जैसी मैंने सोने से पहले लगाई थी; न जाने उनकी वह मूर्ति किस रास्ते चुपके-चुपके आती है और जगने पर किस रास्ते से भाग जाती है।

[८] शब्दार्थ नेकु=थोड़ा भी।

भावार्थ (नायिका सखी से कहती है कि) मैंने बहुत कुछ समझाकर कहा, मगर मेरे नेत्र कुछ भी सीख नहीं मानते। तन और मन दे डालने पर भी ये नेत्र हँसते ही रहते हैं (इन्हे कुछ परवाह नहीं है।) तो इन पर क्या जोर चल सकता है!

शब्दार्थ तुरङ्ग=घोड़ा;

भावार्थ हे सखी! मेरे ये, छवि का नशा पिये हुए, नेत्र ऐसे बहक गये है (भ्रम मे पड़ गये हैं) कि ठौर-कुठौर नहीं देखते, मन की बात प्रकट कर देते हैं। इनकी दशा क्षण में कुछ और, क्षण में कुछ और ही हो रही है।

[१०] भावार्थ विरह से उद्विग्न नायिका सखी से कहती है, कि मेरी इन दुखिया आँखों के लिये सुख बनाया ही (सिरजोई) नहीं गया। क्योंकि जब नायक सामने उपस्थित रहता है और देखने का अवसर प्राप्त रहता है तब इन आँखो से (लज्जावश अथवा प्रेमाश्रु आ जाने से) इच्छा भर देखते नहीं बनता और जब वह ओट मे हो जाता है तब बिना देखे (प्रेम के आधिक्य से) व्याकुल होती है।

[११] भावार्थ हे मन! तू मोहन से प्रेम कर उनकी सुन्दर घनवत श्याम शरीर की छवि को (ध्यान से) देखा कर। यदि तू (चंचलता ही करना चाहता है तो) कुञ्जों मे विहार करनेवाले कृष्ण के साथ विचरा कर। तू यदि अपने को महाबली और साहसी समझता है तो गोवर्धनधारी कृष्ण को हृदय मे धारण कर।

[१२] शब्दार्थ घन रुचि=बादलों के समान श्याम, सुचितई=शांति, स्थिरता।

भावार्थ जो ब्रजवासियों का बहुमूल्य (उचित) धन है, जिस पर शरीर मेघ के रंग का (श्याम है) वह जब चित्त में नहीं आया तब भला शांति कैसे मिल सकती है।

अलंकार यमक।

[१३] शब्दार्थ अनाकनी=अनसुनी; गुहारि=पुकार; वारन=हाथी, विरद=कीर्ति।

भावार्थ हे ईश्वर! आपने तो सुनी अनसुनी-सी कर दी; मालूम होता है मानो एक बार हाथी को (गजेन्द्र मोक्ष की ओर इंगित है) अब अन्य जनों को तारने की कीर्ति ही छोड़ दी है। अब, (दुःखी भक्तों की पहले अच्छी लगने वाली पुकार) फीकी सी (प्रभाव हीन) हो गई है।

अलंकार उत्प्रेक्षा।

[१४] शब्दार्थ दानि=दानी, बानि=आदत।

भावार्थ हे कृष्ण! पहले तो तुम थोड़े ही गुणों से प्रसन्न हो जाते थे। अब वह आदत आपने भुला दी। मानो आप भी आजकल के दाता हो गये हैं (जो पहले तो कठिनाई के बाद देर से प्रसन्न होते हैं। प्रसन्न होकर भी केवल मौखिक सहानुभूति दिखा देते हैं और यदि कुछ देना ही पड़े तो वर्षों टालमटोल करते हैं)।

अलंकार उत्प्रेक्षा

[१५] शब्दार्थ जगबाय=संसार की हवा;

भावार्थ मैं कब से दीन होकर पुकार रहा हूँ; किन्तु हे

श्याम ! तुम सहायक नहीं होते। हे जगत के गुरु ! हे संसार के मालिक ! क्या आपको भी संसार की हवा लग गई !

अलंकार उत्प्रेक्षा।

[१६] भावार्थ हे गोपी-वल्लभ ! मेरे गुणों और अवगुणों को न गिनिये। अपने हृदय मे वही कृपा बनाये रखिए (जो पतितों को तारते वक्त धारण करते हो), जिससे मै भी पतितों के साथ तर जाऊँ।

[१७] शब्दार्थ कोरिक=बीसियों;

भावार्थ चाहे कोई बीसियों की सम्पत्ति संग्रह करे, चाहे लाखों या हजारों की। मेरी सम्पति तो श्री कृष्ण ही हैं, जो सदा सबकी विपत्ति का नाश किया करतें हैं।

[१८] शब्दार्थ मो=मेरी; जदुपति=कृष्ण; विदारनहार=नाश करनेवाला।

भावार्थ हें कृष्ण। मैं अपनी करनी से जैसा हूँ वैसा ही रहूँगा (कोई भी कर्म के फल को नहीं बदल सकता) अतः हे गोपाल; आप हठ न करें, मुझे तारना बड़ा कठिन काम है !

[१९] शब्दार्थ कुबत=कुवार्ता, निंदा; त्रिभंगी लाल=श्री कृष्ण।

भावार्थ हे दीन दयाल ! संसार मेरी निंदा किया करे (पर मुझे कुछ परवाह नहीं) मैं तो कुटिलता न छोड़ूँगा। क्योंकि तुम त्रिभंगी लाल (तीन जगह से टेढ़े हो); तुमको सीधे चित्त में बसने से दुःख होगा।

टिप्पणी त्रिभंग खड़े होने की एक मुद्रा है जिसमें पेट, कमर और गर्दन में कुछ टेढ़ापन होता हैं। प्रायः श्रीकृष्ण के ध्यान मे इस प्रकार खड़े होकर बंशी बजाने की भावना की जाती है।

अलंकार व्याज स्तुति

[२०] भावार्थ हे यदुराज ! (श्री कृष्ण) मुझसे और आपसे तो अब विवाद बढ़ ही गया है, देखना है कि अब कौन जीतता है। अपनी अपनी कीर्ति के निर्वाह की लज्जा दोनों को करना चाहिये। (देखना है कि मैं पाप करने में बढ़ जाता हूँ या आप पापियों को तारने में)।

[२१] भावार्थ हे गोपाल ! अपनी करनी से तो मैं अपने हृदय में सकुचता ही था; इस पर आप अपनी इस चाल से मुझे और अधिक लज्जित क्यों करते हैं कि मुझ सरीखे अति विमुख (निपट पापी) की ओर भी आप सम्मुख रहते हैं; दया दिखाते हैं।

[२२] भावार्थ जो बिना सम्पत्ति के ही श्रीकृष्ण मेरी यथार्थ प्रतिष्ठा (पति) रखें, तो अनेक अवगुणों से भरी सम्पत्ति को मेरी बला चाहे। (मैं इसे कभी न चाहूं)।

[२३] भावार्थ हे हरि ! आप से हजार बार मेरी यही विनती है कि जिस तरह संभव हो मुझे अपने दरवाजे पर पड़ा रहने दीजिए, आश्रय से न हटाइये।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(यमुना छवि)

[१] शब्दार्थ तरनि-तनूजा = यमुना; तमाल = एक प्रकार का सदा बहार वाले वृक्ष (जो पहाड़ों पर यमुना के किनारे अधिकतर पाया जाता है); कूल सों = तट की ओर; परसन

हित=छूने के लिये; किधौं=अथवा; मुकुर=दर्पण; उझकि—झुककर; प्रणवत=प्रणाम करते हैं; पावन=पवित्र; पावन-फल=मोक्ष; आतप=गर्मी; वारन=निवारण के लिये; नै रहे=झुक रहे हैं; कै=अथवा, या तो।

भावार्थ यमुना के तट पर लगे हुए तमाल वृक्षों की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहते है कि

यमुना के तट पर बहुत से तमाल वृक्ष लगे हुए हैं। वे तट की ओर झुके हुए इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानों जल स्पर्श करना चाहते हैं; अथवा दर्पण (जल) मे सब झुक-झुक कर अपनी शोभा देख रहे हैं; या नहीं तो जल को मोक्ष देने वाला जानकर लोभवश प्रणाम कर रहे है, अथवा तट को धूप की तीव्रता से बचाने के लिये सघन छाये हुए हैं; अथवा (यमुना बिहारी) श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिये झुके हुए हैं, जिन्हें देखकर हृदय और नेत्र को सुख प्राप्त होता है।

टिप्पणी पूर्ण कविता में छप्पय छन्द है। इस पद मे मुख्य रूप से उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार हैं।

[२] शब्दार्थ कहूँ=कहीं ; अमल = श्वेत ; सवालन-सेंवार; गोभा=अंकुर; दृगधारि=नेत्र धारण कर; उमगे=फूटे; ढिगु=समीप; उपहार=सामग्री।

भावार्थ कवि तट के स्थल भाग से आगे बढ़कर जल में खिले हुए कमल और कुमुदिनी पुष्पों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कहीं-कहीं अनेक प्रकार के निर्मल कमल शोभित हो रहे हैं; तो कहीं शैवालिनी के बीच कुमुदिनी की पंक्तियाँ लगी हुई हैं। वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानों यमुना जी अनेक नेत्र धारण कर ब्रज की शोभा देख रही हों, अथवा प्रियतम और

'प्रेयसी के प्रेम के असंख्य-अंकुर (इन कमल-कुमुदिनी पुष्पो के रूप में) विकसित हो रहे हो; या नही तो यमुना अपने प्रियतम (श्रीकृष्ण) को (इन पुष्पों के रूप में) अनेक हाथों से अपने समीप बुलाती हुई शोभित हो रही हो, अथवा वे पूजा की सामग्री लेकर अपने कृष्ण से मिलने के लिये मनोमुग्ध चली जा रही हो।

टिप्पणी १ ब्रजभूमि से प्रवाहित होने के कारण 'निरखत ब्रज शोभा' कहा गया है।

२ सरिता के प्रवाह को उसकी चाल कहकर कवि ने वर्णन मे सजीवता ला दी है।

३ यहाँ मुख्यतया उत्प्रेक्षा अलंकार है।

[३] शब्दार्थ उपमान=जिससे उपमा दी जाय; यहि=इन्हें; भृङ्गन=भौंरे; मिस=ब्याज, बहाना; वदन कमल=मुख कमल झांई=परछांई; ब्रज तियगन=ब्रज वालाओ का समूह; कमला=लक्ष्मी; सात्विक=सतोगुण, जिसका रंग श्वेत माना जाता है; (श्वेत कमल), अनुराग=प्रेम, जिसका रंग लाल माना जाता है, (लाल कमल); बगरे-फिरत=बिखरे हुए; भौन=भवन, सतधा=सैकड़ो तरह।

भावार्थ इस छन्द मे भी कवि यमुना मे खिले हुए कमलों का ही वर्णन करते हुए आगे कहते हैं कि अथवा प्रियतम कृष्ण के चरणो की समानता कमलो से दी जाती है यह जानकर यमुना इन कमलो को अपने हृदय मे धारण किये हुए है; अथवा इन कमलो मे स्थित भँवरो के गुञ्जन के बहाने अनेक मुँह से प्रियतम कृष्ण की स्तुति कर रही है; या नही तो यमुना तट पर आने वाली ब्रज वालाओ के कमल सम सुन्दर मुख का प्रति-

बिम्ब इन कमलों के रूप में जल पर झलक रहा है; ब्रजवासी कृष्ण के चरण-कमल को स्पर्श करने के लिये अनेक लक्ष्मी अवतरित हुई हैं; अथवा (श्वेत कमल के रूप में) सात्विक भाव तथा (लाल कमल के रूप में) अनुराग दोनों भाव समस्त ब्रजभूमि में फैले हुए हैं; अथवा इन कमलों को लक्ष्मी-भवन (क्योंकि लक्ष्मी 'पद्मालया' पद्म ही है घर जिसका कही जाती हैं) जानकर यमुना अनेक विधि से अपने जल पर धारण करती है।

अलंकार उत्प्रेक्षा अलंकार।

[४] शब्दार्थ छिन=क्षण; राका निशि=पूर्णिमा की रात्रि; अवनी=पृथ्वी; तान=वितान; चंदोवा; ओभा=प्रकाश; मुकुरमय=प्रतिबिम्बित; अम्बर=आकाश।

भावार्थ इस पद में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रात्रि में यमुना-जल की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उन पर (यमुना-जल पर) जिस समय पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा का प्रकाश पड़ता है तब ऐसा प्रतीत होता है कि जल से लेकर आकाश तक एक वितान फैला दिया गया है। उस समय यमुना-जल में आकाश प्रतिबिम्बित होने से उज्ज्वल जल-छवि दर्पणमय प्रतीत होती है। उस सुन्दर छटा को देखकर शरीर, नेत्र तथा हृदय सभी को बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। ऐसा कौन कवि है जो उस समय यमुना-जल की शोभा का वर्णन कर सके (अर्थात् अवर्णनीय है)। ऐसा प्रतीत होता है मानों पृथ्वी और आकाश मिल गये हैं जिससे दोनों की शोभा एक सी दिखाई पड़ती है।

अलंकार अतिशयोक्ति!

[५] शब्दार्थ मधि=मध्य में; लोल=चंचल; रास-रमन=रास क्रीड़ा; जल उर=जल में।

भावार्थ जब यमुना के जल पर चन्द्रमा का प्रतिविम्ब पड़ता है उस समय की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहते है कि चन्द्रमा की परछांई जल मे कहीं चमकती हुई पडती है, तो चंचल लहरों के संसर्ग से कभी नाचती हुई वह मन को मुग्ध करती है उस समय (ऐसा प्रतीत होता है) मानो कृष्ण के दर्शन के लिये चन्द्रमा जल मे निवास करता हुआ शोभित हो रहा हो; अथवा तरङ्ग रूपी हाथों मे दर्पण लिये हुए (यमुना) सुशोभित हो रही हो; अथवा रास-क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्ण के मुकुट की ज्योति (चन्द्रमा के रूप मे) दिखाई पड़ती हो; अथवा जल मे श्रीकृष्ण निवास करते हैं उन्हीं का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा हो।

[६] शब्दार्थ सत=सैकड़ो ; दुरिभाजत=छिपकर भाग जाता है या छिप जाता है; पवन-गवन वस=हवा चलने के कारण; विम्ब रूप=गोलाकार; गुड़ी=पतंग; हिंडोरन=झूले; कलोलें=क्रीड़ा करते हैं; अवगाहत=स्नान करतीहैं, ब्रज रमनी=ब्रज बाला।

भावार्थ (यमुना जी के जल मे) सैकड़ो चन्द्रमा दिखाई पड़ते हैं। कभी तो वे प्रकट होते हैं और कभी छिप कर दूर हो जाते हैं। वायु चलने के कारण तरङ्गित जल मे अनेक सुन्दर रूपों मे चन्द्रमा का विम्ब दिखाई पड़ता है उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा प्रेम मे अनुरक्त होकर यमुना जल मे विहार कर रहा हो; अथवा (वह) डोर के समान प्रतीत होने वाली चंचल लहरो के झूलों मे झूल रहा हो, अथवा आकाश मे किसी शिशु की पतंग इधर-उधर उड़ती हुई शोभित हो रही हो; अथवा कोई चन्द्र मुखी ब्रजबाला यमुना-जल मे स्नान करती हुई आ रही हो।

[७] शब्दार्थ जुग पच्छ=दोनो पक्ष (कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष) प्रतच्छ=प्रत्यक्ष; अविकल=पूर्ण; कालिन्दी-नीर=यमुना-जल; रजत=चाँदी; चकई=चकरी (गोलाकार एक खिलौना जिसके घेरे मे डोरी लपेटी जाती है) उच्छरत=उछलता है; निसिपति=चन्द्रमा; मल्ल=पहलवान ।

भावार्थ यमुना जी के जल मे चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब का प्रकट होना और विलीन होना ऐसा मालूम होता है मानो शुक्ल पक्ष और कृष्णपक्ष एक ही साथ आते और जाते रहते हैं; अथवा पूर्ण चन्द्र तारिकाओ के साथ खेलते हुए ठगने के लिए कभी प्रकट हो जाता है और कभी अदृश्य; अथवा यमुना के जल में जितनी भी लहरें उत्पन्न होती हैं उतने ही रूप धारण करके वह उससे (यमुना से) मिलने के लिए दौड़ता है, अथवा बहुत सी चाँदी की चकरियाँ चल रही हैं, अथवा फौव्वारो से निर्मल जल ऊपर उछल रहा है, अथवा चन्द्रमा रूपी पहलवान अनेक प्रकार से उठने बैठने का व्यायाम कर रहा है ।

[८] शब्दार्थ कूजत=बोलते हैं; कलहंस=हंस; मज्जत=स्नान करते हैं, पारावत=कबूतर; कारण्डव=एक प्रकार का बत्तख, जलकुक्कुट=जल-मुर्गा, चक्रवाक=चकवा, बक=बगुला; सुक=तोता; पिक=कोयल; भ्रमरावली=भौंरो का समूह; रोर=आवाज ।

भावार्थ इस छंद मे कवि यमुना-तट-वर्ती तथा जल मे निवास करने वाले पक्षियो का वर्णन करते हुए कहते हैं कि

कही राजहंस मधुर शब्द करते हैं; कहीं कबूतर डुबकी लेते हैं; कहीं कारण्डव (विशेष बत्तख) उड़ते हैं कहीं जल-मुर्गे दौड़ते हैं; कहीं चकवा पक्षी निवास करते है तो कही बगुले (मछली के

लिए) ध्यान लगाये बैठे रहते है; कहीं कोयल और तोते पानी पीते हैं; तो कहीं भ्रमरपंक्तियों मे गुञ्जार करते हैं; कहीं (आनन्द से) बहुत से मयूर नाच रहे है तो कहीं कहीं अनेक प्रकार के पक्षी शोर करते है। यमुना का जल पीकर और उसमे स्नान करके आनंदित हो वे तट की शोभा से अत्यंत मुग्ध रहते है।

[९] शब्दार्थ बालुका= रेत; रजत सीढ़ि=चाँदी की बनी हुई सीढ़ियां; आगम हेत=स्वागतार्थ, पाँवड़े=किसी विशेष सम्मानीय व्यक्ति के स्वागतार्थ द्वार से मंच अथवा आसन तक बिछा हुआ वस्त्र. रत्नराशि=रत्नो की ढेरी; चिकुरन=बाल, परसि छूती हुई।

भावार्थ इस छंद मे कवि यमुना की रेत की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहते है कि

कहीं तट पर उज्ज्वल सुकोमल रेत बिछी हुई है। वह ऐसा प्रतीत होता है मानो चांदी तुल्य उज्ज्वल श्वेत रेत की सुन्दर सीढ़ियाँ शोभित हो रही हैं; अथवा प्रिय के स्वागतार्थ मानों स्निग्ध पाँवड़े बिछा दिये गये है अथवा मणियो की ढेरी के चूर्ण करके मानो तट पर बिछा दिये गये है; अथवा एक ओर श्याम वर्ण के तमाल वृक्ष समूह को छूती हुई तथा दूसरी ओर यमुना के नीले जल प्रवाह को स्पर्श करती हुई बीच मे बिछी हुई रेत इस प्रकार शोभित हो रही है मानो किसी सौभाग्यवती स्त्री की माँग मे मोती पूर दिये गये हो, अथवा श्वेत रेतकण ऐसे प्रतीत होते है मानो तट पर सत्व गुण छाया हुआ है और ब्रज की पवित्र भूमि मे सत्व गुण के निवास को देखकर हृदय हर्षित होता है।

मैथिलीशरण गुप्त

पंचवटी में लक्ष्मण

[१] शब्दार्थ चारुचंद्र=सुन्दर शशि; खेल रही हैं=फैल रही हैं; अवनि=पृथ्वी; अंबर=आकाश।

भावार्थ शीतल चंद्रमा की चंचल किरणें समस्त जल थल मे फैल रही हैं। पृथ्वी और आकाश मे निर्मल ज्योत्स्ना (धवल चंद्रिका) छायी है। हरी दूब के द्वारा पृथ्वी का आनंद प्रकट हो रहा है। शीतल वायु के झकोरों से मानो वृक्ष भी अलसाये से डोल रहे हैं।

टिप्पणी 'हरा होना' ही आनंद का सूचक है; और पृथ्वी की पुलक-सूचिका है हरीतिमा।

[२] शब्दार्थ भुवन=संसार, विश्व; कुसुमायुध=कामदेव; भोगी=विषयी, सर्प; निर्भीक मना=डर रहित मन वाले।

भावार्थ पंचवटी की (सघन) छाया में अभिराम कुटी जो कि पत्तों से आच्छादित है, बनी हुई है। उसके समक्ष एक साफ चट्टान पर यह कौन धीर, शूर और निर्भीक धनुषधारी सजग खड़ा है, जब कि सारा संसार नींद ले रहा है? वह (विशेष सजगता के कारण) विषयीसा (सौंदर्य के कारण) कामदेव सा, (और बेषभूषा से) तपस्वी सा प्रतीत होता है।

टिप्पणी विषयी रात को जागता है। सर्प रात को हवा खोरी करने निकलता है। काम रात को अधिक सशक्त होता है। योगी रात को जागता ही रहता है या निशां सर्व भूतेषु तस्यां जागर्ति संयमी'।

[३] शब्दार्थ व्रती=व्रत किये हुए; विपिन=जंगल, प्रहरी =पहरेदार; रत=लगा हुआ।

भावार्थ नींद को इस प्रकार छोड़े (रात्रि मे भी जागृत रहने वाला) यह किस व्रत को लिये हुए है ? राज्य-सुख पाने योग्य होकर भी जंगल मे यह बैरागी क्यों कर है ? यह जिस कुटी की रक्षा कर रहा है उसमें ऐसी कौन सी लक्ष्मी है, जिस के लिये इसने अपना तन मन और जीवन सर्वस्व अर्पित कर दिया है ?

[४] शब्दार्थ मर्त्यलोक=मृत्युलोक, पृथ्वी; मालिन्य=मलिनता, शोकादि; प्रहरी=रक्षक; विजनदेश=निर्जन स्थान; शेष=काफी; निशाचरी=राक्षसी।

भावार्थ मृत्युलोक के दुःखादि का निवारण करने के लिये जो अपने स्वामी के साथ आई है, उसी तीनों लोक की लक्ष्मी ने आज इस कुटी में पदार्पण किया है। जब वह स्वयं वीर वंश की वधू, अतः मर्यादा, है तब उसका रक्षक क्यो वीर न हो ? इसके अतिरिक्त इतनी अमूल्य लक्ष्मी है, स्थान निर्जन है, रात्रि शेष है, और निशाचरी प्रभुत्व है।

टिप्पणी एक तो लक्ष्मी की ही रक्षा की अवश्यकता है; उस पर रात्रि मे निर्जन स्थान मे, और सबसे अधिक तीन लोक की लक्ष्मी (सबसे मूल्य वान वस्तु) फिर रक्षक सामर्थ्यवान क्यो न हो।

[५] शब्दार्थ जनमन=मानव हृदय, आप आपकी=स्वयं अपनी ही, मोदमयी=प्रसन्न।

भावार्थ एकांत मे भी मानव-हृदय चुप नहीं रहता, उसकी क्रियाएँ नहीं रुकतीं। ऐसी स्थिति में वह स्वय अपने से बात

करता है। और स्वयं अपनी सुनता है। यह वीर धनुषधारी अपनी प्रसन्न दृष्टि से देखकर मन ही मन मे नयी नयी बातें करता है, उसके हृदय मे नई नई भावनाएँ उठती हैं।

[६] शब्दार्थ निस्तब्ध=शब्द-रहित, शान्त; स्वच्छन्द=अबाध; गंधवह=पवन, वायु; निरानंद=आनन्द रहित।

भावार्थ यह अत्यंत निर्मल चंद्रिका है, और रात्रि भी एकदम नीरव; मंद पवन बे रोक टोक बह रहा है; ऐसा कोई स्थल नहीं जो आनंद रहित हो। अभी भी विधि नटी के कार्य व्यापार बंद नहीं, चल रहे हैं। किंतु कितने अज्ञातरूप से; शांतरूप से।

[७] शब्दार्थ वसुंधारा=पृथ्वी, मोती=ओस; विराम-दायिनी=आराम देने वाली; शून्य= आकाश. श्यामतनु=कृष्ण देह; अंधकार पूर्ण।

भावार्थ पृथ्वी सन्ध्या समय तारे बिखेर देती है और प्रातः काल रवि उन्हे बटोर ले जाता है। पश्चात्, उस आराम देने वाली वस्तु को पुनः संध्या को दे जाती है, जिससे उनका शून्य श्याम शरीर (आकाश) एक नया रूप प्रकट करता है।

टिप्पणी मोती का ओस परक अथ ठीक नहीं जचता क्यों कि सबके सोने पर का अर्थ यदि यह लिया जाय कि सब के सोने के पश्चात् ओस पड़ती है, तो ठीक नहीं क्यो कि ओस शाम से ही गिरने लगती है। और फिर ओस की बूदें जब सूर्य मे कुछ तेजी आती है तब गायब हो जाती हैं, सुबह होते ही नहीं। पर तारे शाम होते ही प्रकट हो, पौ फटते ही विलीन हो जाते है।

[८] शब्दार्थ आर्त=अत्यंत दुखी; तात=आदरसूचक संबोधन (यहाँ पिता)।

भावार्थ तेरह वर्ष (घर से निकले) बीत जाने पर भी वह हाल ही की बात प्रतीत होती है, जब हमें वन की ओर आते देखकर पिता जी (राजा दशरथ) अत्यन्त दुखी होकर मूर्छित हो गये थे। अब वह दिन दूर नहीं जब चौदह वर्ष जंगल में रहने की अवधि पूर्ण हो जावेगी, किन्तु मुझे (इस जन) कौन-सा विशेष धन मिल जाने वाला है, अर्थात कुछ भी नहीं।

[९] शब्दार्थ आर्य=रामचन्द्र जी; प्रजार्थ=प्रजा के हित के लिये; व्यस्त=काम में लगे हुए; विसारेंगे=भूलेंगे; लोकोपकार=जनहित।

भावार्थ और आर्य को भी क्या प्राप्त हो जाने वाला है? राज्य-कार्य तो वे प्रजा के हित के लिये ही ग्रहण करेंगे और उन्हीं कार्यों में फँसे रहेंगे, तथा समयाभाव के कारण लाचार होकर हम लोगों को भी भूल जावेंगे। जनहित का ध्यान रखकर संसार इतना अशक्त है कि वह अपनी भलाई आप नहीं कर सकता?

[१०] शब्दार्थ मँझली माँ=कैकेयी; निर्वासित=देश से निकालकर।

भावार्थ--क्या कैकेयी ने यह सोचा था कि मैं राजमाता होऊँगी अर्थात् मेरा पुत्र भरत राज्य पायेगा और राम को वन भेजकर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकूँगी। किन्तु चित्रकूट में उसकी हालत अत्यन्त दयनीय थी, कारुणिकता की पराकाष्ठा थी; सब की टकटकी उसी ओर लगी थी लेकिन उसमें स्वयं अपने को देखने की शक्ति न थी।

टिप्पणी चित्रकूट में कैकेयी को आत्मग्लानि का अनुभव हुआ। देखिये 'भरत गलानि कुटिल कैकेई' तुलसी।

[११] शब्दार्थ राजमातृत्व=राजा की माँ होना; बड़भागी=भाग्यशाली ; मूढ़=मूर्ख ; विश्वानुकुल्य=सारे संसार की सुविधाएँ।

भावार्थ वाह! राजमाता बनने चली थीं और भरत ने सर्वस्व छोड़ दिया, किन्तु वे सैकड़ों महाराजाओं से अधिक भाग्यशाली है। मूर्ख संसार ने एक राज्य को कितना कीमती मान लिया. कितना महत्व बढ़ा दिया; हमको तो यहाँ संसार की सारी सुविधाएँ प्राप्त है।

टिप्पणी 'अहो…… ……यही था' यहाँ लक्ष्मण जी व्यंग कर रहे है।

[१२] शब्दार्थ राजत्वमात्र=केवल राजा होना; लक्ष=उद्देश्य।

भावार्थ यदि राजा होना ही हमारे जीवन का अन्तिम ध्येय होता तो हमारे पूर्वज राज्य को छोड़कर बन में (वान प्रस्थ आश्रम के समय तपस्या करने) क्यो जाते ? यदि परिवर्तन ही उन्नति का लक्षण है तो हम अग्रसर होते जा रहे हैं किन्तु मुझे तो पहले के सरल और सच्चे भाव अच्छे लगते है।

टिप्पणी आश्रमधर्म के अनुसार चार आश्रम थे

पहला ब्रह्मचर्य, दूसरा ग्राहस्थ्य, तीसरा वानप्रस्थ चौथा सन्यास। जीवन का ध्येय मोक्ष माना गया है।

[१३] शब्दार्थ वनचारी=बन में रहने वाले पशु, पक्षी एवं तपस्वी; बिहरते है=घूमते है; सयत्न=कोशिश करके; हिले=परिचित; स्वयंपित=खुद ही।

भावार्थ चाहे जो कुछ भी हो श्री राम जहाँ भी रहते हैं; वही वे राजा बनते हैं। उनके शासन मे बन के रहनेवाले

समस्त जीव स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करते हैं। शहरों मे जिन्हें हम कोशिश करके पिंजड़ों में बन्द रखते हैं वे ही पशु-पक्षी यहाँ भाभी से (सीता) स्वयं ही प्रिय परिचित हो गये हैं।

[१४] शब्दार्थ पतित=नीच, अत्याचार भ्रष्ट; पशुता=पशुत्व गुण; विसर्ग नियमों=प्राकृतिक नियमों; सुरत्व=देवत्व।

भावार्थ प्रायः हम अत्याचारभ्रष्ट, नियमभ्रष्ट लोगों में पशुत्व गुण का आरोप करते हैं किन्तु पशुओ ने अपने किन स्वाभाविक नियमों की अवहेलना की है। मैं मानवता को देवत्व की माँ याने देवत्व दिलाने वाली कह सकता हूँ किन्तु भ्रष्ट लोगों को पशु कहना सहन नहीं कर सकता (क्योंकि यह पशु वर्ग के प्रति अन्याय है)।

[१५] शब्दार्थ चारु=सुन्दर; चपल=चंचल; खिझाते=चिढ़ाते; आर्या=सीता।

भावार्थ अनेक प्रकार के पशु-पक्षी यहाँ आ आकर दोपहर मे विश्राम करते हैं। भाभी उन्हे खाना खिलाती और पञ्चवटी की सघन छाया उनको मिलती है। जिस प्रकार सुन्दर, चञ्चल बालक मिलकर माँ को दिक करते हैं, उसी प्रकार खेल करके, तंग करके भी भाभी को वे सब (पशु पक्षी) यहाँ खुश करते हैं।

[१६] शब्दार्थ मन से=अपनी खुशी से, मन के समान; सुमन=फूल; नक्षत्र=तारे।

भावार्थ (हम सब की खुशी मे प्रकृति स्वयं साथ दे रही है) गोदावरी नदी का तट मानो सङ्गीत का नाद भर रहा है; बहता पानी मानो मधुर ध्वनि से तान भर रहा है; वृक्ष के पत्ते मानो नाच रहे है. फूल अपनी खुशी से सुगंध लुटा रहे हैं;

आकाश के चंद्र और तारे (इस खुशी में भाग लेने के लिये) ललचाये से उतरे पड़ रहे हैं।

[१७] शब्दार्थ वैतिलिक = गायक, विहंग = पक्षी, सम्प्रति = अब भी; ध्यान लग्न = विचार मग्न; तुल्य = समान; नर्तक = नाचने वाला; केकी = मोर; प्रस्तुत = तैयार।

भावार्थ गायक पक्षी, अब भी विचार मग्न प्रतीत होते है; मानो नये गीत रचने मे, कवियो के समान भावमग्न है। बीच बीच मे नाचने वाला मयूर (चुनौती देता हुआ) मानो यह कहता है, मै तो तैयार हूँ। देखें कल श्रेय किसे मिलता है: प्रशंसा कौन पाता है।

[१८] शब्दार्थ तत्वज्ञान = सार वस्तु का ज्ञान, ब्रह्मज्ञान; आख्यान = कहानी; कण्टकों = कॉटो; अत्र-तत्र सर्वत्र = यहॉ वहॉ सब जगह।

भावार्थ यहॉ (पञ्चवटी मे) तत्वज्ञानी ऋषियो का सत्सङ्ग है जिनसे सुन्दर नई बाते सुनने को मिलती हैं, जिनका जीवन पूर्ण फूल जितने अधिक दुखो मे, जो कि कॉटो के समान है, खिला, उन्हे यहॉ वहॉ सब कही सुगन्धि के सदृश यश मिला।

टिप्पणी जो जितनी ही कठिनाइयो को पार करके उन्नति करता है उसको उतना ही सम्मान होता है।

[१९] शब्दार्थ सिद्धॉत वाक्य = आदर्श वाक्य; शुक = तोता, सारी (सारिका) = मैना;

भावार्थ आश्रम के सुग्गे और मैना भी सुन्दर आदर्श वाक्य (अच्छे उद्धरण) का उच्चारण करते हैं। ऋषि कन्यायें वीरता के गीत गाती हैं। सचमुच राम के वनराज्य मे सब कोई

सुखपूर्वक जीते हैं; सिह और मृग भी (जो एक दूसरे के विरोधी है, एक भक्ष्य है तो दूसरा भक्षक) एक ही स्थल पर आकर पानी पीते हैं।

[२०] शब्दार्थ गुह, निसाय, सबर=बन की जातियाँ; कानन=जंगल,-आनन=मुख

भावार्थ श्रीराम वन मे गुह, निषाद शवर आदि (के समान छोटी समझी जाने वाली जातियो) के लोगों के विचारों का सम्मान करते हैं, उन्हे सन्तुष्ट रखते हैं। सचमुच मे इनके भोले मुख से कैसे सरल कपट रहित वचन निकलते हैं। समाज यद्यपि इन्हे नीच कहकर पुकारता है, फिर भी ये भी तो आखिर (वैसे ही) प्राणी है। इनके भी मन है और उनमें भाव उठा करते है किन्तु (सभ्य कहे जाने वाले लोगो के समान) कलापूर्ण बातें करना नहीं जानते।

[२१] शब्दार्थ व्यजन=पंखा, प्रयोजन=आवश्यकता; मनः प्रसाद=मन की प्रसन्नता, प्रासाद=महल; विपुल=बहुत।

भावार्थ वन मे हमे कभी भी पंखे की आवश्यकता नहीं पड़ती। निर्मल जल तो है ही। शहद, कन्द, फल, मूल आदि अनेक प्रकार के भोजन की सामग्री भी उपलब्ध है। मन की प्रसन्नता तो मुख्य है फिर झोपड़ी और महलो मे विशेष अन्तर नहीं। यहाँ भाभी को जंगल मे असीम आनंद है, वहाँ मँझली कैकई को राजभवन मे भी अत्यतं दुख है।

टिप्पणी पद उन्नीस के समान 'मन चंगा तो कठौती मे गङ्गा' वाली लोकोक्ति का 'मनः प्रसाद क्या प्रसाद' मे सुन्दर निर्वाह न हो सका।

[२२] शब्दार्थ निराती=कोड़ती; स्वावलम्ब=अपनी शक्ति पर निर्भर

भावार्थ 'स्वावलम्ब......कोप'। आत्म निर्भरता को इस दृश्य पर कुबेर का खजाना भी न्योछावर किया जा सकता है अर्थात् कोई महत्व नहीं रखता।

[२३] शब्दार्थ सांसारिकता=ससार के व्यवहार. निरुपटता=अलगाव, लोभ आदि से दूर रहने की प्रवृत्ति; अत्रि=एक मुनि; अनुसूया=अत्रि की धर्म पत्नी; पुण्यगृहिता=घर की पवित्रता; अधिष्ठात्री=स्वामिनी; विकृति=बिगाड़, निरूपता।

भावार्थ यहाँ के सांसारिक व्यवहार में भी विशेष प्रकार की निर्भीकता दिखाई पड़ती है। अत्रि और अनुसूया की गृहस्थी के समान पवित्र गृह कहाँ है? मानो यह संसार ही अलग है, जहाँ बनावटी पन की कोई जरूरत नहीं, स्वयं प्रकृति इसकी स्वामिनी है, जहाँ (शहरों के समान) विकार नहीं आने पाया है।

[२४] शब्दार्थ स्वजन=सम्बन्धी; क्षेम=कुशलता।

भावार्थ इस वनवास में दोनों ओर दुख का विषय यही रहा कि हमें अपने प्रिय जनों की चिन्ता है और उन्हें हमारी। प्रेम सब कुछ सह सकता है, किन्तु दूरी नहीं सह सकता आँख से ओझल होना उसे सह्य नहीं। केवल सामने रहने से प्रेम की कुशलता अक्षत रहती है।

टिप्पणी आँखों की ओट होने पर प्रेम प्रियतम की कुशलता में अनिष्ट की आशंका करने लगता है।

माखनलाल चतुर्वेदी

कैदी और कोकिला

टिप्पणी आज प्रान्त की राजनैतिक परिधि में चतुर्वेदी जी के लिये कोई स्थान न देखकर, इस प्रकार की शंका होना स्वाभाविक है कि आपका राजनीति से कोई सम्बन्ध न था। किन्तु स्वतांत्र्य-संग्राम के वीर जानते हैं कि सन् १९२१ के आन्दोलन से ही आप कांग्रेस मे कार्य करते रहे हैं और मध्य प्रान्त के अच्छे राष्ट्रकर्मी माने जाते हैं।

प्रस्तुत कविता मे आपने जेल-स्थित भावनाओं को लेखनीबद्ध किया है।

[१] शब्दार्थ बटमार=लुटेरा; हिमकर=चन्द्रमा; आली=सखी; मृदुल=कोमल।

भावार्थ हे कोयल, बताओ तो तुम्हारे गाने का क्या अर्थ है? गाते गाते तुम हठात् क्यो रुक जाती हो? कोकिले, तुम किसका क्या सदेश ला रही हो?

यह तो जेलखाना है, इसकी ऊँची-ऊँची काली चहारदीवारी मे, जो चोर, डाकू, लुटेरे आदि का स्थान है (जो इन्हीं के लिये बना है) स्वस्थ जीवन और योग्य भरपेट भोजन भी नहीं मिलता, जहाँ सुख से मरने का भी अधिकार नही, केवल तड़पा-तड़पाकर रखा जाता है, जीवन रातदिन कठोर नियंत्रण मे है। क्या यही राजकीय-व्यवस्था है अथवा अराजकता है?

चन्द्रमा ने डूबकर जब रात्रि को और भीतममय कर दिया है तब ऐसे समय मे हे काले रंग वाली! (कोकिल) तू कैसे जाग

पड़ी ? कोकिले, दुःख भाराक्रान्त सी एक टीस कैसे निकल पड़ी, यह तो बताओ। क्या लुट गया; बताओ तो सम्पत्ति की रखवाली करने वाली के समान कैसे आवाज लगा सजग कर दिया ?

[२] शब्दार्थ उभय=दोनो; दावानल=वन की अग्नि।

भावार्थ अभी रात के समय कैदी सो रहे हैं, क्या यह स्वर उनके खुर्राटे लेने का है, या दिन के दुःख की याद कर वे आह भर रहे हैं, या कभी-कभी लोहे के दरवाजों के खुलने की आवाज सुनाई पड़ती है, या (चपरासियों के चलने से) बूटों की आवाज सुनाई पड़ रही है, अथवा पहरेदार आवाज लगा रहे है। कैदी संख्या की गिनती करते हुए एक, दो, तीन, चार का चीत्कार रहे हैं। जब मेरे दोनो नेत्र आँसू से भर चुके, इस अनमेल परिस्थिति में मधुर गीत गाने क्यो आई हो ? कोकिल, बताओ तो क्या पगली हो गई, जो आधी रात को चीख उठी हो। कोकिले, किस वन की अग्नि दीख पड़ रही है, जो इस प्रकार तुम चीख उठी।

टिप्पणी कैदियों की गिनती रात को भी की जाती है कि कही कोई भाग तो नही गया; पहरेदार कैदी उनका नम्बर बोलकर उपस्थिति जताते हैं।

[३] शब्दार्थ मधुराई=माधुर्य; कारागृह=जेल; विटप=वृक्ष; वल्लरी=लता।

भावार्थ क्या तुमने अपने माधुर्य को जेल में बिखेरने, हृदय के घावो पर अमृत की वर्षा करने, या हठ ठानकर हवा, वृक्ष, लता को पार कर भी, जेल की दीवारों को लाँघ, अपने स्वर की शक्ति नापने या मेरे आँसुओं को समेट, आकाश के

इन दीपों (तारों) को, दाहक समझ कर बुझाने आई हो? वे तारागण तो अंधकार नष्टकर जग की रखवाली करते हैं। क्या उनका प्रकाश तुम्हें भला मालूम न हुआ? सूर्य निकलते ही संसार को जागरण का सन्देश देने वाली कोकिले! बताओ तो इस आधी रात मे पगली के समान संसार को जगाने क्यों आई हो?

[४] भावार्थ मैंने, तेरे मधुर गीतों का पूर्ण प्रभाव फूलों पर छाये ओसकण पर, रवि की रश्मियों पर, मोती के समान जलकण बिखेरते विन्ध्याचल के निर्झरों पर, सदैव ऊँचे उठने का संकल्प लिये इस जंगल पर तथा संसार को भयभीत करने वाली इस तीव्र वायु पर, प्रकाश में, सजीवता से देखा है। कोकिले! बताओ तो तुम जानकर या अनजाने ही उस (प्रभाव) को क्यों नष्ट कर रही हो? हे कोयल! तुम इस अन्धकार पूर्ण रात्रि पर मधुर गीत अंकित करने के लिये क्यों बाध्य हुई हो?

टीप कोयल का स्वर प्रभात मे बड़ा सुखद मालूम पड़ता है।

[५] भावार्थ क्या तुम हमारा इस प्रकार हथकड़ी बेड़ी पड़े बंदी रहना नहीं सहन कर सकती? "क्या इसीलिये तुम्हे दुःख है"? अरी यह तो ब्रिटिश राज्य का आभूषण है। या हमे पत्थर फोड़ते देखकर क्या तुम्हे दुःख हो रहा है? सच बात तो यह है कि हमारी अँगुलियाँ इस पर गीत के बोल निकाल रही हैं। या चलते हुए कोल्हू की चरखी की आवाज तुम्हे हमारे प्रति सहानुभूति प्रकट करने को विवश कर रही है? अरी कोयल, यह तो जीवन का संगीत है। और हम जो पेट पर गुलामी का

जुआ लादे मोट खींच रहे हैं, वह मानों अंग्रेजों के दगा को कूप खाली कर रहे हैं। दिन में रुलाने वाली वेदना न जाग पड़े इसलिये क्या रात में तू संचित करुणा उड़ेल रही है? इस निस्तब्धता मे अधकार पार करके कोकिल, तुम क्यो रो रही हो? अज्ञात-रूप से अपने इस असंतोष से इस प्रकार सुखद राजद्रोह का बीज क्यो बो रही हो?

[६] शब्दार्थ शृंखला=जंजीर: हुंकृति=हुंकार।

भावार्थ स्वयं तू भी काली है, रात्रि भी काली है, शासन की करतून भी काली है, विचार भी काले, कल्पना भी काली, मेरी काल कोठरी भी काली है, यहाँ तक कि मेरी टोपी, कम्बल तथा जंजीर सभी कुछ काले है। पहरेदारो का सर्पिणी के समान विषैला हुंकार है, इसके ऊपर भी हे सखि! गाली की बौछार है। मरने के लिये प्रस्तुत कोयल बोलो तो, तुम किस प्रकार इस काले दुःख-समुद्र पर अपने उज्ज्वल गीतो को तैरा रही हो।

[७] शब्दार्थ वृत्त=कहानी।

भावार्थ तुम हरी डाल पर बैठी हो, मेरे भाग्य मे काली कोठरी बदी है, तुम आकाश भर मे स्वतंत्र विचरण करती हो। मेरा संसार इस दस फुट को कोठरी में सीमित है। तुम्हारे गीत की सर्वत्र प्रशंसा होती है, किन्तु मेरे लिये रोना भी अपराध है। मेरे और तुम्हारे बीच कितना वैषम्य है! इतने पर भी तू रणभेरी बजा कर आह्वान कर रही है। तेरे इस हुंकार पर, कोकिले बताओ तो मै क्या कार्य कर दिखाऊँ? मनमोहन के जीवन के लिये अपना जीवन रस किस मे उड़ेल दूँ, अपने प्राण कहाँ न्योछावर कर दूं?

टीप ध्यान रहे, कवि वृन्दावन के मनमोहन के समान ही राष्ट्रपिता' मनमोहन से भी प्रभावित है!

[८] भावार्थ फिर तुम्हारी कुहू की आवाज ! क्या तुम्हारा गाना वंद न होगा ? इस अंधकार मे तुम्हारे गान का माधुर्य नष्ट हो रहा है । आकाश कमजोरों को पचा जाना खूब जानता है । तुम क्यो अपने गान को उसमे विलीन कर रही हो, उसका प्रभाव नष्ट कर रही हो (क्यो कि तुम्हारा क्षीण स्वर आकाश मे अधिक देर तक नही ठहर सकता) ? इस पर भी वेदना को समझने वाले कैदी सो रहे है और नींद मे अपनी दुःखद स्मृतियो को भुला रहे है । क्या अपने गान के द्वारा तुम इस जेल की लौह-पाशो में माधुर्य भर सकोगी ? क्या इन मृत तुल्य घृणित व्यक्तियो में तुम्हारी करुणा उनके उच्छ्वासो के द्वारा समा जायगी ? कोकिले वताओ तो, सुवह होते ही क्या सारे संसार का सव क्रम उलट जायगा ?

जयशंकर प्रसाद

अशोक की चिंता

[१] शब्दार्थ शलभ=पतंग; अनल=अग्नि; रक्तिम=लाल ।

भावार्थ पतंग (शलभ) के समान जीवन जल रहा है । मनुष्य का सारा जीवन एक पल के समान है । विश्व की तुलना मे जीवन सूक्ष्मातिसूक्ष्म पतंग के समान है । किन्तु मानव की अमिट प्यास, अग्नि की ऊँची लपटें वनकर यौवन की मादकता दिखलाती है । फिर मन मे जलने की साध क्यों न उत्पन्न हो ?

टिप्पणी जीवन-पतंग=जीवन रूपी पतंग (रूपक अलंकार) ।

[२] शब्दार्थ दूरागत=दूर से आती हुई; क्रन्दन=रोने की आवाज ।

भावार्थ आज मगध का मस्तक ऊँचा है; पराजित कलिंग चरणों पर पड़ा हुआ है; दूर से आता हुआ क्रन्दन स्वर आज मुझ विजयी के घमंड को नष्ट कर चंचल होकर क्यों गूँज रहा है ?

[३] भावार्थ रक्त की प्यासी तलवारों से इनकी तेज धार से, क्रूरता की चोंट से तथा 'मारो-काटो, की आवाज से आज उत्कल (कलिंग) का मस्तक नत हो चुका है ।

[४] शब्दार्थ शासन=व्यवस्था ।

भावार्थ क्या इस दमन में भी सुख है ? यथार्थ सुख तो मानव-मन की शान्ति मे है । यह छोटी सी विजयेच्छा इतनी बोझिल (दुःखदायिनी) होगई । यह दुःख के बादल केवल दो दिन के हैं । फिर इन्हे चीरकर चिर-स्वस्थ प्राकृतिक सुख होगा ।

[५] शब्दार्थ दंभ=घमंड; दानव=दैत्य, राक्षस; अनंग=कामदेव, पुष्पधन्वा; आसव=मदिरा, मधु; रव=आवाज ।

भावार्थ यह मनरूपी महा घमंडी दैत्य तृष्णा की मदिरा से उन्मत्त होकर अत्यन्त भयानक कोलाहल मचा चुका । ऐ मानव ! इस हार-जीत के पचड़े को छोड़कर प्राणि-मात्र को सुखी कर ।

[६] शब्दार्थ- नश्वरता=क्षणभंगुरता; सुरंग=रागरंग ।

भावार्थ यह कौन (अर्थात-नियति) इङ्गित कर रही है जो राज्य मुकुटों को क्षण भर मे पद-दलित कर देती है; जिससे

विजयी की जयमाला मलीन पड़ जाती है और केवल नाश के गीत सुनाई पड़ने लगते हैं ? किन्तु इतने पर भी जीवन पतंग का नाश नहीं रुकता ।

[७] शब्दार्थ वैभव = ऐश्वर्य ; मधुशाला = मदिरालय ; हाला = शराब ।

भावार्थ इसी अस्थिरता के कारण मानव गिरता है उठता है फिर भी उसके हृदय मे उन्माद (हाला) भरा हुआ है । किन्तु यह भोग विलास पल भर में नष्ट हो जाने वाला है ।

[८] शब्दार्थ अलक = बाल; मदनत = मद से झुके हुए; आलस तंदिल = नींद से बोझिल, ललक = प्यार भरी दृष्टि, प्यार भरा चितवन; तरंग = जीवन तरंग (लहर) ।

भावार्थ संसार क्षण-भंगुर है; कामिनी के कृष्ण-केश में; उसकी उनींदी मद भरी पलको मे; माँगपूरित मोतियो और मणियो की झलक मे, तृषित प्यार भरे चितवन में, इस जीवन-तरंग को (मैंने) क्षण भर में नष्ट होते देखा है, (एकाएक खत्म होते पाया है) ।

[९] शब्दार्थ नीरव = निर्जन, स्तब्ध, मूक, उत्सवशाला — विश्वरंगमंच; श्लथ = थकित ; मधुबाला = नायिका ; मृदंग — ढोलवत् एक बाजा ।

भावार्थ काल के इस परिवर्तन के बाद विश्व नाट्यशाला आकर्षणहीन हो जाती है; नायिका के घुँघरू स्वरहीन हो जाते हैं; गले की माला बिखर जाती है (सारा श्रृङ्गार अस्त-व्यस्त हो जाता है) और निराश हृदय अन्त में लुढ़क पड़ता है; उसके दर्शन की उमंगें नष्ट हो जाती हैं, तब वहाँ कोई रागरंग नहीं सुनाई पड़ता ।

टिप्पणी (१) सूखा लुढ़का है प्याला = हृदय की उमंगें नष्ट हो गई हैं।

(२) बजती वीणा न वहाँ मृदंग = रागरंग का कोई साधन उपलब्ध नहीं है।

[१०] शब्दार्थ विषाद = दुःख; गगन = आकाश; चपला = विद्युत; विषाद गगन = शून्य-हृदय; सुख चपला सा = क्षणिक सुख; दुःखघन = दुःख के बादल; मरु-मरीचिका वन में = नीरस हृदय में झूठी आशा सी या अस्थायी ऐश्वर्य या मिथ्या ऐश्वर्य; मन कुरंग = चंचल मन।

भावार्थ यह शून्य हृदय दुःख के बादलों से आच्छादित है, उनके (दुःख) बीच सुख की ज्योति क्षणिक फूट पड़ती है। तथापि यह चंचल मन नष्टप्राय मृग-तृष्णा में फँसा हुआ है।

[११] शब्दार्थ निषंग = तरकस।

भावार्थ आँखों से अश्रुधारा बह रही है किन्तु संसार में कोई किसी के दुःख की परवाह नहीं करता। इस प्रकार सारहीन जीवन बीता जा रहा है और मृत्यु समीपतर आ रही है।

[१२] शब्दार्थ वेदना-विकल = दुःख से व्याकुल चेतन = मानव; जड़ = भावशून्य; लयसीमा = स्वर सधि; नर्तन = यहाँ पर-छटपटाना; कंपन = आवाज काँप रही है; अभिनयमय = नाट्यपूर्ण; कब से = अनादिकाल से।

भावार्थ वेदना की पराकाष्ठा से मानव बेहोश हो चुका है; किन्तु पीड़ा से छटपटा उठता है; उसकी कराहती हुई आवाज काँप रही है। सुख और दुःख का यह नाटकीय परिवर्तन अनादिकाल से चल रहा है।

[१३] शब्दार्थ गाथा=कहानी; पीलामुख=उदास चेहरा; पिंगल=पीला; सन्ध्या सुरंग=सन्ध्या नायिका।

भावार्थ स्वयं वेदना (करुणा) इस नश्वरता की कहानी सुनाती है; हवा में भी उदासी है; ऊषा में स्वभाव जन्य प्रसन्नता का अभाव है और सन्ध्या-नायिका भी उदासी में डूबी हुई है।

[१४] शब्दार्थ आलोक=प्रकाश; दृग-पुलती कुछ नय पाती=आँखों में कुछ आशा दौड़ जाती तमपट=अंधकार का आवरण; विहंग=यहाँ गान-पक्षी।

भावार्थ प्रकाश की किरणें रेशमी डोर की भाँति बिछी जा रही हैं; आँखों मे आशा दौड़ जाती है पुनः वे किरणें अंधकार मे विलीन हो जाती हैं; मन-पखेरू कोलाहल कर शान्त हो जाता है।

[१५] शब्दार्थ मिलना=तड़पना; चटकीला=आकर्षक, सुमन=पुष्प या मन।

भावार्थ जब क्षणिक मिलन के पश्चात् शाश्वत् विरह में तड़पना है, केवल एक ही ऊषा मे खिलकर फूल को कुम्हलाकर धूल मे मिल जाना है, (तब) पुष्प का रंग इतना आकर्षक क्यों है? मन का इतना राग रंजित रहना क्या अर्थ रखता है!

[१६] शब्दार्थ संसृति=संसार; विक्षत=जख्मी; पग=कदम, चरण; अनुलेपि=चन्दनादि सुगंधित द्रव्यों तथा औषधों का लेपन; भृङ्ग=भौंरा, हृदय।

भावार्थ संसार के जख्मी पैर लड़खड़ाते पड़ रहे हैं, उसमें अनस्थिरता आ गई है। रे मन! कोमल भावनायें (मृदुदल) बिखेर कर, तू इस संसार को (अब तो) शीतलता प्रदान कर

(अनुलेप सदृश तू लग रे)। अब तक इस हृदय (भृंग) ने अनेक पुष्पों को रस विहीन किया, (अर्थात् उजाड़ डाला); विश्व का आनन्द लूटा। (अशोक अपने मन से कहता है कि अब तो करुणा बिखेर दे।)

[१७] शब्दार्थ भुनती वसुधा=जलती पृथ्वी; नभ—आकाश, अगजग=अनाड़ी संसार; सिकता=रेत।

भावार्थ सारी पृथ्वी (आतप से, दुःख से) जल रही है, पर्वत भी तप्त हो रहे हैं; सारा झूठा संसार दुःखी है, जहाँ हर कदम पर काँटे हैं। जीवन का यह मार्ग जलती हुई रेत के पथ के समान दुःखदाई है। तू (अपने मन से अशोक कहता है) इसमें करुणा की लहर बनकर फैल जा। यह जीवन रूपी पतंग जल रहा है।

सुमित्रानन्दन पंत

मौन निमन्त्रण

भूमिका रहस्यवादी कवि आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिए सदैव विकल मानता है। पंत का कवि हृदय परमात्मा से मिलने का संकेत प्रकृति के हरएक अवयव से पाता है, जो प्रत्येक छंद के अन्तिम चरण से क्रमानुसार लक्षित होता है। निमन्त्रण स्वीकृति के पश्चात् आत्मा की मिलन-यात्रा आरम्भ होती है ऋतुएँ क्रमानुसार बीतती जाती हैं। सत्ता के रहस्योद्घाटन से पूर्ण अनुभव प्राप्त कर आत्मा सायुज्य (आत्मा परमात्मा मिलने की स्थिति) की स्थिति में पहुंच जाती है।

[१] शब्दार्थ स्तब्ध=शांत; ज्योत्स्ना=कौमुदी, चन्द्रिका; स्वप्न अजान=भोले स्वप्न; नक्षत्रों=तारों।

भावार्थ चन्द्रिका सिक्त नीरव रजनी में जब सारा संसार अबोध शिशु सा निद्रा की गोद में पड़ा रहता है, और जब उसकी मूँदी हुई आँखों में कोमल भावों से ओतप्रोत पवित्र एवं भोले भाले स्वप्न विहार करते हैं तब अनजाने ही कौन तारों के झिलमिल संकेत से मुझे निमंत्रण देता है।

[२] शब्दार्थ भीमाकाश=अनंत आकाश; तमसाकार=अंधकारपूर्ण; समीर=वायु; दीर्घ निःश्वास भरता=सॉय-सॉय करती है; प्रखर झरती=घोर वृष्टि होती; पावस-धार=वर्षा की धारा; तपक=लपककर; तड़ित=बिजली; इङ्गित=इशारा।

भावार्थ जब विस्तृत आकाश मे मेघों की घटायें पूर्ण अंधकार उड़ेल कर गर्जना करती हैं, सनसन करती हुई हवा चलने लगती है, मूसलाधार वर्षा होने लगती है, तब एकाएक विद्युत् के रूप मे न जाने मुझे अपने मौन संकेतों से कौन बुला रहा है।

[३] शब्दार्थ वसुधा=पृथ्वी; यौवन भार=पूर्ण विकसित अवस्था; मधुमास=वसंत; विधुर उर=दुःखी हृदय, मृदु उद्गार=कोमल आह; सोच्छ्वास=आह पूर्ण; सौरभ=सुगन्धि, मिस=बहाना, व्याज।

भावार्थ वसुन्धरा की वसंत कालीन पूर्ण छटा को देखकर कलियाँ दुःखी हृदय की कोमल आह के समान स्वभावतः चटख जाती हैं, तब सुगन्धि के बहाने मुझे कोई चुपके चुपके संदेशा भेजता है।

[४] शब्दार्थ क्षुब्ध=आलोड़ित; जलशिखर=जलतरंगे, वात=हवा; फेनाकार=केनिल; विधुर=बिखरा।

भावार्थ समुद्र की आलोड़ितु जल तरंगो को जब हवा मथ कर फेनिल बना देती है तो कभी बुलबुलों का ताँता लग जाता है और कभी वह अज्ञात रूप से बिखेर कर नष्ट कर डालती है उस समय कोई चुपके चुपके लहरो से हाथ उठाकर मुझे आह्वान करता है।

[५] शब्दार्थ स्वर्ण सुख श्री=स्वर्णिम सुन्दरता; भोर=सवेरा; बोरा=डुआ, विहँग=पक्षी; कुल=समूह; कल=सुन्दर, अलस पलक=अलसाई पलकें।

भावार्थ ऊषा के आगमन से जब सारा संसार स्वर्णिम आभा और सुगन्धि मे डूब जाता है। चिड़ियों की चहचहाहट, पृथ्वी से आकाश तक गूँज उठती है तब तोई चुपके से मेरी उनींदी पलकी को खोल देता है।

[६] शब्दार्थ तुमुल तम=घोरांधकार; एका कार=एक होकर; भीरु=कायर; तन्द्रा=आलस्य; खद्योत=जुगनू।

भावार्थ जब रात्रि के घने अंधकार में (शराबोर हो॰) एक हो कर एक सी एक साथ संसार की आँखें झंप जाती हैं और जब झींगुरो की भयातुर चीत्कार से निद्रा भंग हो जाती है तब चुपके से जुगनुओं के रूप मे मुझे कौन पथ प्रदर्शित करता है।

शब्दार्थ कनक-छाया=स्वर्णिम आभा; सकाल=प्रातः; सुरभि पीड़ित=सुगन्धि से उन्मत्त; मधुपो=भौंरे; बाल=शिशु; विह्वल=द्रवित हो कर;।

भावार्थ प्रातःकाल स्वर्णातप मे जब कलि खिल उठती हैं, तो सुगन्धि से उन्मत्त भ्रमर-शिशु एकदम तड़पकर निकलते हैं

और गूँजने लगते हैं। उस समय ओसकण के रूप में ढलकर कोई चुपके मेरी आँखों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

दीप कमल का फूल रात्रिको बन्द हो जाता है, भौंरा उसके सम्पुट मे बन्द हो जाता है।

[८] शब्दार्थ गुरुतर भार=कठिनता; स्वर्ण अवसान=सुनहला अन्त; विछा=समेटकर ; शून्य शय्या=एकाकिनी; श्रमित=थकित ; जुड़ाती=शीतल करती ; आकुल प्राण=व्याकुल प्राण।

भावार्थ सूर्यास्त के समय जब पश्चिमाकाश में लालिमा छा जाती है, तब मैं दिन भर से कार्यों को समेट लेती हूँ। रात्रि के समय जब अत्यधिक थककर एकाकिनी (अकेली) शय्या में अपने व्याकुल प्राण को शीतल करती हूँ, उस स्वप्न में मुझे कोई चुपके से अनेक अदृश्य स्थानों का सैर कराती हैं।

[९] शब्दार्थ द्युतिमान=ज्योतिर्मय, प्रकाशवान; अबोध=अज्ञान, छिद्रों=रोम कूपों; सहचर=साथी।

भावार्थ मुझको अज्ञ (अज्ञानी) तथा भोलीभाली समझकर ऐ अज्ञात ज्योतिर्मय क्या अज्ञात पथ प्रदर्शित करते हो तथा मेरे रोम-रोम (रन्ध्रकूप) में मधुर गीत भर रहे हो; तथापि हे मेरे सुख दुःख के चिरमौन साथी मैं नहीं जानती कि तुम कौन हो।

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"

तुम और मैं

टीप कवि ने 'तुम' का संबोधन ब्रह्म के लिये, 'मैं' का जीव के लिये किया है। उन्होंने ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध में यह बतलाया है कि जीव ब्रह्म का ही अंश है। यह कवि की कोई नयी उद्भावना नहीं, अपितु भारतीय रहस्यवाद का अत्यन्त प्रचलित विश्वास है।

[१] शब्दार्थ तुङ्ग=ऊँचा; शृङ्ग=शिखर; सुरसरिता गङ्गी; उच्छ्वास=आह; कान्त कामिनी=सुन्दर; सुरापान मद्यपान; घन अंधकार=घोर अंधेरा; भ्रान्ति=भ्रम; बेहोशी; खर=प्रचंड; सरसिज=कमल; योग=साधना।

भावार्थ तुम यदि हिमालय के उच्च शिखर हो, तो मैं चंचल वेगवाली गङ्गा हूँ। तुम यदि शुद्ध हृदय के उच्छ्वास हो तो, मैं उससे उत्पन्न सुन्दर (ललित) कविता हूँ। तुम यदि प्रेम हो तो, मैं उससे प्राप्त होने वाली अन्तिम शान्ति हूँ।

[२] भावार्थ तुम यदि मद्यपान के महामोह हो, तो मैं उसके उपरांत उत्पन्न होने वाली उन्मत्त भ्रान्ति हूँ। तुम यदि रवि की तीव्र किरण के समूह हो, तो मैं उससे उत्फुल्ल कमल की हँसी हूँ। तुम यदि अनेक वर्षों के व्यतीत विरह हो, तो मैं उसके पूर्व की (मधुर) स्मृति हूँ। तुम यदि साधना हो, तो मैं प्राप्त होने वाली सिद्धि हूँ।

[३] शब्दार्थ रागानुग=प्रेम-पथी, भक्ति से उत्पन्न; निश्छल=सरल; शुचिता=पवित्रता; समृद्धि=वैभव; मृदु—

कोमल; मानस=मन; मनोरंजिनी=मन प्रफुल्लित करनेवाली; विटप=वृक्ष।

भावार्थ तुम यदि प्रेमासक्त सरल तप हो, तो मैं उससे उद्भूत उसकी पवित्रता का नैसर्गिक वैभव हूँ। तुम यदि कोमल हृदय के भाव हो, तो मैं उस भाव को व्यक्त करने वाली मनोत्फुल्लकारी भाषा हूँ। तुम यदि नन्दन वन (इन्द्र का वन) के सघन वृक्ष हो, तो मैं तुम्हारी सुखद शीतल छाया देने वाली शाखा हूँ। तुम यदि प्राण हो, तो मैं देह हूँ।

[४] शब्दार्थ सच्चिदानन्द=परमात्मा (सत्=सत्य; चित्=चेतना=ज्ञान, आनन्द) प्रेममयी=प्रेयसी; काल-नागिनी=सर्पिणी; कर-पल्लव-झंकृत=किसलय सम कोमल हाथों से बजाई गई, रेणु=धूलि।

भावार्थ तुम निर्विकार सत्य, चेतन तथा आनन्द युक्त ब्रह्म हो, तो मैं मिथ्या, जड़ तथा वेदनामय मन को मुग्ध करने वाली (अतः अशुद्ध) माया हूँ। तुम यदि प्रेयसी के गले के हार हो, तो मैं काल सर्पिणी के समान उसके बालों की काली चोटी हूँ। तुम यदि कर किसलय से ध्वनित सितार हो, तो मैं उससे उत्पन्न आकुल कर देने वाली विरह की रागिनी हूँ। तुम मार्ग हो, तो मैं उसकी धूलि-कणिका हूँ।

[५] शब्दार्थ अधर=ओठ; वेणु=बांसुरी; श्रान्त=थकित; भवसागर=संसार; दुस्तर=दुर्गम; अभिलाषा=इच्छा।

भावार्थ तुम यदि राधा के कृष्ण हो, तो मैं उनके ओठों पर सुशोभित होने वाली बांसुरी हूँ। तुम यदि सुदूर के (अनादि-काल से चलने वाले) थकित बटोही हो, तो मैं उसकी मार्ग-प्रतीक्षा हूँ। तुम यदि दुर्गम भवसागर हो, तो मैं उसके संतरण

की अभिलाषा हूँ। (जीवन का उद्देश्य ही है ब्रह्म का रहस्योद्घाटन) तुम यदि आकाश हो, तो मै उसमें सर्वत्र व्याप्त नीलिमा हूँ।

[६] शब्दार्थ सुधाकर=चन्द्रमा; कलाहास=कलावैभव (पूर्णकला विकास); निशीथ=मध्य रात्रि; मधुरिमा=माधुर्य; पराग=पुष्परज; मृदुगति=मंद-मंद प्रवाहित होने वाली; मलय-पवन=दक्षिणी-पवन; स्वेच्छाचारी=निर्बन्ध; मुक्त स्वतंत्र; पुरुष=ब्रह्म; प्रकृति=माया; शक्ति=दुर्गा, पार्वती।

भावार्थ तुम यदि शरदचन्द्र के पूर्ण कला-वैभव हो, (शरद चन्द्रिका सबसे अधिक ललित मानी गई है) तो मैं उस मध्य रात्रि की मधुरिमा (सुन्दरता) हूँ। तुम यदि सुवासित पुष्परज हो, तो मै मंदगति से प्रवाहित होने वाली सुरभित वायु हूँ। तुम यदि स्वेच्छापूर्वक विहार करने वाले स्वतन्त्र पुरुष (ब्रह्म) हो, तो मैं मायारूपिणी स्नेह-शृंखला हूँ। तुम यदि शिव हो, तो मैं आदिशक्ति पार्वती हूँ।

[७] शब्दार्थ मधुमास=वसंत; पिक=कोयल; कल-कूजन-तान=ललितकूक स्वर; मदन=कामदेव; पंचशरहरा=पंच बाण धारी।

नोट कामदेव के निम्न पाँच बाण होते हैं :

सम्मोहन; उन्माद, शोषण, तापन, स्तम्भन अतः उसे 'पंच-शर' भी कहा जाता है। मुग्धा अनजान=अज्ञात यौवना; अम्बर=आकाश; दिग्वसना=दिशाएँ ही हों वस्त्र जिसके अर्थात् पृथ्वी।

भावार्थ तुम यदि रघुकुल के गौरव स्वरूप (मर्यादा)

रामचन्द्र हो, तो मैं अटलभक्ति स्वरूपिणी सीता हूँ। तुम यदि उल्लास (आशा) पूर्ण वसंत हो, तो मैं कोयल की सुरीली स्वर-लहरी हूँ। तुम यदि पंचबाण-धारी अनंग हो, तो मैं उसके वशीभूत अज्ञात-यौवना हूँ। तुम यदि वस्त्ररूपी आकाश हो, तो मैं निर्वस्त्रा पृथ्वी हूं, जिसे तुम आवृत्त किये रहते हो। अथवा—तुम यदि वस्त्र-युक्त (आवृत्त या गूढ़) ब्रह्म हो, तो मैं नग्ना (स्पष्ट माया) हूँ।

[८] शब्दार्थ- घन-पटल-श्याम=मेघ रूपी काला पट; तड़ित्तूलिका=विद्युत् रूपिणी कूची; रचना=चित्र, रण-ताण्डव-उन्माद=रणोन्मत्त-ताण्डव-नृत्य; ओंकार सार=ओंकार का सार तत्व; कवि-शृंगार-शिरोमणि=सर्व श्रेष्ठ शृंगारी कवि; कुन्द=एक प्रकार का श्वेत पुष्प; अरविन्द-शुभ्र=श्वेत-कमल; निर्मल-व्याप्ति=धवल-चन्द्रिका।

भावार्थ- तुम यदि कृष्ण-मेघ-पट के कुशल चित्रकार हो; तो मैं विद्युत् की कूची द्वारा निर्मित तसवीर हूँ। तुम यदि भैरव के ताण्डव-नर्तन के उन्माद हो, तो मैं लास्य (स्त्री-नृत्य) करती हुई नारी की ललित किंकिणि-ध्वनि हूँ। तुम यदि वेदों के सार तत्व ओंकार के स्वर हो, तो मैं कवि की सर्वश्रेष्ठ शृंगारिक रचना हूँ, जो माया के महत्व को प्रदर्शित करती है। तुम यदि यश हो, तो मैं उससे प्राप्त तृप्त भावना हूँ। तुम यदि कुन्द-पुष्प, चन्द्र तथा कमल-से धवल हो, तो मैं उनमें व्याप्त रहने-वाली निर्मल धवलता हूँ।

डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र

नव युवक

[१] शब्दार्थ महामहिम=बड़ी कीर्ति वाले; बुद-बुद=बुलबुले; अमर वृन्द=देव गण; तरल=चंचल; बल निधान=बलशाली ।

भावार्थ ओ नवयुवक ! तू स्वर्गीय संगीत सुनकर अपना परिचय प्राप्त कर ले । ओ विशद कीर्ति वाले ! सागर के समान विशाल एवं गंभीर । अपने को तू बुल बुला मात्र न समझ । आज भी तेरे ही चंचल इंगितों पर अमर समूह जीवित हैं; उनकी ख्याति का कारण तूही है । तेरे ही जयघोषों से इतना विस्तृत आकाश टिका हुआ है । तेरी आँखों के तारे, तेरी ही दृष्टि पर सारी इच्छाएँ आधारित हैं । संक्षेप मे सारी संस्कृति का आधार तू है । तू यदि आग में कूद पड़े तो वह भी फूल सी कोमल हो जाय, कठिनाइयो मे घुस जाय तो कठिन भी आसान हो जाय ! (इतनी सामर्थ्य होते हुए भी) तू आश्चर्य चकित होकर अपने को क्यों भूल रहा है; तू अपनी शक्ति पहिचान ।

[२] शब्दार्थ ऊसर=अनुर्वर; अनुपजाऊ; रज=धूल; विदलित=त्रस्त, शोषित; विभु=ब्रह्मा ।

भावार्थ तेरी इच्छा (और प्रयत्न) से ऊसर जमीन भी गंगा का पावन कछार बन जायगी । तेरी ही इच्छाओं पर अगाध समुद्र भी क्षण भर मे सूखकर ऊसर रूप धारण कर ले; धूलि-कण पर्वत बन जायँ; पर्वत ढहकर गिर जायँ, नष्ट भ्रष्ट हो जायँ । तेरी इच्छा होते ही दलित भूदेवताओं के स्वर्ग से होड़

लेने लगे; तू स्वयं ब्रह्मा का प्रतिरूप है; अपने को इतना छोटा न मान। तेरे लिए संसार में असम्भाव्य कुछ भी नहीं।

[३] शब्दार्थ अतीत = विगत, भूत; सत्ता = शासन; विश्व प्राण = जगत के जीवन।

भावार्थ बीते दिन के सभी कार्यों का तू प्रस्तुत परिणाम है। (अतीत का भोक्ता है) भविष्य का तू निर्माता है। तेरे ही शासन से जग उत्साहित रहता है। हे युवक! तू सम्पूर्ण शक्ति का आगार है! तेरी बराबरी तू ही बता कि कौन कर सकता है? तेरी व्याप्ति कहाँ नहीं है? तू किस में नहीं है, तुमसे कौन काम न हो सका? (अर्थात् सर्वव्यापी है और सर्व शक्तिमान भी। यथार्थ में तू विराट पुत्र है अतः स्वतः विराट है।) हे युवक! हे जगत् जीवन! केवल एक बार अपनी सत्ता दिखा दे।

भावार्थ तेरी तर्जनी उठतेही सारे संसार में आतंक छा जावे। तेरे कोप से आसमान भी काँप उठे; उसके तारे टूट जायँ। तेरी एकाग्रता के सामने पर्वत की अडिगता खत्म हो जावे। वह चूर चूर हो जावे। (संक्षेप में तू सृष्टि उलटने की क्षमता रखता है।) किन्तु इतने पर भी तू ही बता, क्यों अपना अनमोल जीवन आलसी होकर गँवा रहा है? वेद तुझ में ब्रह्मा शक्ति की स्थिति मानता है। तू स्वय अपने संसार का आधार मान ले।

[५] शब्दार्थ दिव्य मंगल-विधान = दिव्य कल्याण कर्ता।

भावार्थ तू आज भी चेत जा: अपनी शक्ति पहिचान ले. तेरे लिए कोई बात असम्भव नहीं। जीवन संग्राम के आघात तुझे सजग कर रहे हैं किन्तु तू अब भी सोता है। आँख खोल

कर (कर्तव्य क्षेत्र) में तू अग्रसर हो। तुझे कौन पराजित कर सका है (तू अविजित है) आश्चर्य है कि तुझ जैसा शूरवीर अपनी ही शक्ति से अपरिचित है। हे विश्वके कल्याण कर्ता! तू अपने को मत भूल, एक बार फिर आगे बढ़।

सुभद्रा कुमारी चौहान

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

टिप्पणी हिन्दी साहित्य को दो दशाब्दियों तक राष्ट्रीयता की पावन धारा में आप्लावित करने वाली कवियित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने इस कविता की रचना उस समय की थी जब राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के अन्तर्गत भारत अपनी स्वतंत्रता के युद्ध में संलग्न था। कवियित्री ने भारतीय वीर, वसन्त आदि आनन्द दायक तथा उन्मादकारी उत्सवकाल में क्या करेंगे यही प्रश्न अपने साहित्यिक सौष्ठव के साथ उपस्थित किया है।

(१) आ रही हिमालय से पुकार ....
.... वीरों का कैसा हो वसन्त ?

शब्दार्थ उदधि=समुद्र; प्राची=पूर्व दिशा; दिग्-दिगंत= सब दिशाएँ।

भावार्थ (प्रकृति के हर खंड से) हिमालय से, समुद्र के गर्जन से, पृथ्वी आकाश से, पूर्व पश्चिम आदि सभी दिशाओं

से यही प्रश्न उठ रहा है एक ही आवाज सुनाई पड़ती है कि वीर लोग वसन्त उत्सव किस प्रकार मनावें ?

(२) फूली सरसो ने दिया रंग…….
वीरो का कैसा हो वसन्त ?

शब्दार्थ अनंग=कामदेव; वधु-वसुधा=पृथ्वी रूपी नववधू; कन्त=पति ।

भावार्थ (वसन्तकाल मे) सरसो ने फूलकर अपना सुन्दर रंग फैला दिया मानों कामदेव पराग लेकर आ पहुँचा हो। नववधू के समान पृथ्वी के अंग प्रत्यंग पुलकित हो उठे। किन्तु (प्रणय और आराम के इस आह्वान के बीच) पति (युद्ध-तत्पर) योद्धा के रूप में खड़ा है। भला ऐसी स्थिति मे वसन्त किस प्रकार मनायें। सारान्श यह है कि वसन्त में एक ओर सुख का और विलास का प्रलोभन है और दूसरी ओर देश की पुकार है।

(३) भर रही कोकिला इधर तान…….
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

शब्दार्थ मारू बाजा=युद्ध का बाजा; विधान=उपक्रम, तैयारी।

भावार्थ एक ओर कोयल (मधुर) एवं आकर्षक तान भर रही है, दूसरी ओर युद्ध के बाजे पर वीरता के प्रयाणगीत (Marching Song); एक ओर शृङ्गार का उपक्रम है तो दूसरी ओर युद्ध का आयोजन। शृङ्गार जो कि सृष्टि का आदि कारण कहा जा सकता है और दूसरी ओर जिसका परिणाम, मृत्यु अतः सृष्टि का अन्त है; एक दूसरे से मिलने आवे हैं। शृङ्गार और वीर परस्पर विरोधी हैं, यदि शृङ्गार उत्साह का

कारण नहीं। इसलिये दोनों का मिलना असंभव है। तब भला ऐसी दशा में वीरों का वसन्त कैसे हो ?

(४) गल बाहें हों या हों कृपाण.........
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

शब्दार्थ गल बाहें=आलिंगन; कृपाण=तलवार; चल-चितवन=कटाक्ष; रसविलास=प्रेममय बातें, रसभरी बातें; दलित-त्राण=पीड़ितों की रक्षा।

भावार्थ (ऐसी कठिन परिस्थिति मे आराम और कर्तव्य के द्वन्द्व में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है) कि अपनी प्रेमिका के गले में बाहें डालकर प्रेम किया जाय या संग्राम के लिये हाथ में तलवार उठाई जाय। नयनबाण से (प्रेमिका का हृदय विद्ध किया जाय)। या धनुष बाण से (शत्रुओं का वक्ष क्षत किया जाय) राग रंग में मस्त लेटे रहें या पीड़ितों की रक्षा के लिये कमर कस के खड़े हो जायँ।

(५) कह दे अतीत अब मौन त्याग.....
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

शब्दार्थ अतीत=भूत, बीती हुई; अनन्त=विशाल, जिसका अन्त नहीं।

भावार्थ हे विगत काल! अब अपना मौन त्याग करके तू भी अपनी बीती कहानी कह दे कि लंका में आग क्यों लगी? (सीता जी के कारण।) कुरुक्षेत्र के मैदान मे महाभारत क्यों हुआ? (द्रौपदी के कारण।) तू अपने पहले के अनेक अनुभवों के द्वारा बतला कि बहुत से विनाशकारी युद्ध स्त्रियों के कारण हुए हैं इसलिये अब वीर उस पुरानी रीति को छोड़कर अपना वसन्त कैसे मनाएँ ?

(६) हल्दी घाटी के शिला खंड……

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

शब्दार्थ- शिला खंड=पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानें; ज्वलन्त =जलती हुई।

भावार्थ- हल्दी घाटी के पत्थर के टुकड़ो ! तुम राणा प्रताप तथा सिंहगढ़ के प्रचंड गढ़ ! तुम अपने ताना जी मूल सरे के शौर्य से गौरवान्वित होकर इतिहास प्रसिद्ध उन उज्ज्वल स्मृतियों को आज फिर से ताजा कर दो, ताकि वीर समझ जायँ कि उनका वसन्त कैसा हो ?

(७) 'भूषण', अथवा कवि 'चन्द' नहीं,……

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

शब्दार्थ- बिजली भर दे=स्फूर्ति पैदा कर दे; बँधी=सीमित; हन्त=हाय; स्वच्छन्द=स्वतन्त्र।

भावार्थ- अब युद्धक्षेत्र में स्वयं लड़कर तथा लेखनी द्वारा वीर रस की ओजस्विनी कविता करने वाले कवि चन्द-बरदाई और भूषण नहीं हैं। अब कविता की पंक्तियो में इतनी शक्ति नहीं जिनसे शरीर में वीर रस संचार हो; बिजली कौंध जाय। कवियों को लिखने की स्वतन्त्रता नहीं, लेखनी (विदेशी राज्य होने के कारण) परतंत्र है। हाय ! ऐसी परिस्थिति मे वसन्तोत्सव किस प्रकार मनाया जाय, यह कोई नहीं बतलाता।

टिप्पणी- चन्द पृथ्वीराज चौहान के समकालीन हिन्दी के प्रथम प्रामाणिक कवि कहे जाते हैं। पृथ्वीराज रासो इनका लिखा काव्य माना जाता है। इन वीरकालीन कवियो की विशेषता यह थी कि वे वीर और श्रृङ्गार का समन्वय कर सकते थे। वह युग रोमान्स और वीरता का था। भूषण शिवाजी

के समकालीन वीर रस के प्रमुख कवि थे। शिवा-बावनी, शिव-राज भूषण, छत्रसाल-दर्शक इनकी रचनाएँ हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा

किरण-कण ।

[१] शब्दार्थ कण=लव; धूम्र=धुँआ; क्रोड़=गोद; अंक; अनल=अग्नि; हाथ=कर किरण; प्रभा=ज्योति।

भावार्थ मैं दीपक की किरण का लव मात्र हूँ। जिसके अंक मे धुँआ है, मैं उस अग्नि की एक किरण हूँ। नवीन ज्योति से समन्वित होने पर भी ताप मेरे साथ है। सिद्धि-फल पाकर भी साधना और तपस्या का जलता हुआ दाग हूँ। मैं दीपक की किरण का लव मात्र हूँ।

[२] शब्दार्थ व्योम = आकाश; तिमिर = अँधेरा; अखिल-प्रण = पूर्ण प्रण-बद्ध।

भावार्थ आकाश में जो घोर अंधकार छाया हुआ है और जिस संकट ने संसार को एक-दो बार नहीं, सैकड़ों बार घेर लिया है, मैं उसी तम का नाश करने के लिये प्रण बद्ध दीपक की एक मयूख (किरण) हूँ।

[३] शब्दार्थ शलभ=पतंग।

भावार्थ मैं वह दीपक की ज्योति हूँ, जिसने पतंगों को,

प्रेम के लिये प्राण न्योछावर करना सिखा कर अमरता प्रदान की; सूर्य की शक्ति लेकर निशा के अंचल में जो समा गया। किन्तु तुम्हारे स्नेह से रहित होकर भी तुम्हारा ही शरणागत हूँ। मैं दीपक की किरण का लवमात्र हूँ

तुम्हारा हास

शब्दार्थ- मधुमास=वसंत; नीरव व्यथा=मौन वेदना, व्यूह=उलझन; शशि=किरण।

टिप्पणी: इस कविता में बादल दुःख का प्रतीक है और मधुमास सुख का। प्रेयसी की हँसी सुख बनकर जीवन में फैल गई।

भावार्थ हे प्रियतमे! तुम्हारी मुस्कुराहट ने इस सूखे से हृदय में कैसी मधुरता उत्पन्न कर दी है; सुख का वसंत आ गया है। मेरी आँखों से मौन (अव्यक्त) वेदना के दो बड़े अश्रु कण ढुलक पड़े हैं। सिसकियों में वेदना किस प्रकार पुञ्जीभूत हो उठी है। (अब तुम्हारी हँसी के रूप में सवेग र किरणों का आह्लाद मिल गया)।

भावार्थ कोकिल भी हाय! किस वेदना के कारण हृदय विदारक स्वर में रो उठी, जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप हृदय में वेदना उमड़कर अब निश्चेष्ट हो गई। किन्तु इस कूक से (तुम्हारी स्मृति हो आने के कारण) आज मैं तुम्हारे समीपतर आ गया हूँ। हे प्रियतम! (ऐसी) तुम्हारी हँसी आई।

भगवती चरण वर्मा

(भैंसा गाड़ी)

[१] शब्दार्थ संसृति=संसार; अंबर=आकाश; भूतल=वसुधा, पृथ्वी; वृहत=विशद, बड़ा, विस्तृत; उच्छ्वास=इच्छायें; जर्जर=जीर्ण; विवशता=लाचारी; तन्द्रिल=धुँधले जड़ता=स्थिरता; स्तर-स्तर=अंग-अंग।

भावार्थ (आज भी देहातों की) भैंसा गाड़ी "चरमर-चरमर-चूँ चरर-मरर" की आवाज के साथ चली जा रही है। सारा संसार अत्यंत वेग से उन्नति की ओर बढ़ा चला जा रहा है, समुद्र पर जहाज चलने लगे हैं; नभ में वायुयान मंडराते हैं; पृथ्वी पर रेलों और ट्रामों का जाल बिछा हुआ है; मानव की समस्त चतुराई समेटे हुए मोटरें दौड़ रही हैं।

किन्तु उस भाग में इच्छायें, भावनायें कुण्ठा कुछ भी नहीं; जहाँ भूखे किसान बेबसी की आहें भर रहे हैं। निर्बल बच्चे, तार-तार कपड़ों में दुर्बल मातायें; जहाँ घूमती हैं, जहाँ बेबसी का नर्तन है; वहाँ के ग्राम्य पथ धूल से भरे हुए हैं।

अपनी अतीत की कहानी को समेटे हुए विगत दिनों की प्रति छाया के समान आने वाले धुँधले भविष्य में वर्तमान की विडम्बना लिये, कितनी शताब्दियों की निश्चेष्ट गति के साथ हृदय में जड़ता के मोह लेकर अहने जीर्ण वक्ष में अपने भग्न विश्वास लेकर, मरी सी आवाज के साथ, अंग प्रति अंग को झकझोरते हुए हाँफती काँपती, रुकती, ठिठकती वह भैंसा गाड़ी आज भी "चरमर-चरमर चूँ चरर-मरर" की आवाज के साथ चली जा रही है।

[२] शब्दार्थ सुख-सुषमा=सुख-सौन्दर्य, वैभव; उच्छृङ्खल=बन्धन रहित; कंकाल=ठठरी; शोणित=रक्त; रुग्ण=बीमार; क्षुधा-ग्रस्त=भूखे; मोरी=नाली; निपट=बिलकुल।

भावार्थ उसी ओर दृष्टि से ओझल करीब पाँच कोस की दूरी पर पृथ्वी की छाती पर फोड़ों के समान कुछ मिट्टी के घर खड़े हुए हैं। मैं उसे खंडहर कहता हूँ, पर वे उसे गाँव के नाम से सम्बोधित करते हैं। जिसमे उनकी दिन रात की धूमिल विफलता भरी हुई है; जहाँ मनुष्य पशुओं की भाँति पिस रहे हैं, जिनका काम जन्म लेकर मर जाना भर है; वहीं दो दिन पूर्व एक छोटे खेत के गेहूं की फसल काटी गई थी।

तुम सुख-सौन्दर्य में पालित लाड़ले हो, तुम्हारी विवेक बुद्धि और ऐश्वर्य महान हैं: तुमने अनेक स्वेच्छाचारिणी, मानिनी स्त्रियाँ देखीं हैं; तुम सुखी, समृद्ध तथा हृष्ट-पुष्ट हो, तुम सभी कुछ करने योग्य हो। बताओ क्या तुमने चलता फिरता एक हड्डी का ढाँचा देखा है?

वह खेत उसका ही था जिसे उसने पिछले चार माह अपने खून सुखा-सुखाकर बेवसी मे कराहते हुए तैयार किया था और घर मे बीमार पत्नी कराह रही थी। माँ बाप के प्यार से वंचित उनके वे तीन बच्चे जो मानवता के लिए व्यंग थे, जिन्हें सुखपूर्ण मृत्यु का भी अधिकार प्राप्त न था। वे अति घृणित, महापतित, अविकसित (बौना) अंग वाले तथा कुरूप थे। भूखे बच्चे नाली के कीड़े-मकोड़ो की भाँति बिलबिला रहे थे। वेदना और चीत्कारों से पूर्ण उसका कुटुम्ब था। प्रतिदिन 'भूखसे लड़ लड़कर, अत्याचारों के बीच पिसते हुए, उसने अपने छोटे से खेत की फसल तैयार की थी। अपने स्त्री बच्चों के पेट काट

काटकर, कण-कण संचित कर (वह इस गाड़ी को ले जा रहा था।)

[३] शब्दार्थ हाट=बाजार; गिरह काट=डाकू, बटमार अभिशाप;=शाप; निरामिष=मांस न खाने वाला; सूदखोर=ब्याज ऐंठने वाले; स्तंभ=खम्भा; सदन=घर गृह; अन्तर=हृदय।

भावार्थ बीस कोस की दूरी पर एक शहर है जहाँ एक बाजार है; चाहे भूखे तड़पें या मरें, उसे धनवानों का ही घर भरना है। धन की आसुरी वृत्ति से ही मानो फटी हुई बेसुरी आवाज के साथ यह भैसा गाड़ी चली जा रही है जिसमें नर-राक्षसों की राक्षसी प्रवृत्ति का प्रभाव फैला है, जहाँ सहूकारों के निवास में चोर और डाकू बसते हैं; जहाँ पाशविकता से कलुषित ऐश्वर्य गरीबों के हाहाकारों के बोझ उठाये हुए हैं; जहाँ रुपयों के बदले अनाज की लूट मची हुई है; उन्हीं चाँदी के टुकड़ो के बल पर बड़े बड़े राज्य कार्य चला करते है, वही राज्य कार्य जो भूखे और कंकालों की निर्मम हत्या पर आधारित हैः इन बड़े बड़े साम्राज्यों की नींव बेकश और भूखे मरने वालो पर ही पड़ी हुई है। वे व्यवसायी हैं, जमींदार है, धनवान हैं तथा एकदम शाकाहारी होकर भी ब्याज के रूप मनुष्य का खून चूसते हैं। इस राज्य-व्यापार के वे ही आधार हैं। जमीन उनकी है, धन उनका हैं; आराम और विभव भी उन्हीं का है और स्वर्ग तुल्य गृह भी उन्हीं के हैं।

इस बड़े शहर में गरीबों की ओर से बेसुध आमोद प्रमोद हुआ करता है जिससे पीड़ित होकर ग्राम क्रन्दन कर उठा है। रुपयों मे ऐश्वर्य है, रुपयों मे ही शक्ति है; इन रुपयो मे भी धर्म

कर्म और धन धान्य है। (अर्थात् जो धनी हैं वे ही धर्मिष्ट हैं, कर्मिष्ट हैं: वैभवशाली हैं तथा शक्तिशाली हैं)

इन्हीं रुपयोने (दूसरी ओर) मानव जीवन को निष्फल कर दिया है; बेकार कर दिया है। इन्हीं रुपयों को पाने के लिये प्रति दिन भूखे रह कर तकलीफें सहकर भैंसा गाड़ी पर लदा हुआ यह दुर्बल मानव चला जा रहा है; उसे तो (साहूकार का) सूद, कर्ज चुकाना है; (जमींदार का) लगान चुकाना है किन्तु जितना धनशून्य उसका घर है उतना ही इच्छा शून्य उसका हृदय है।

भूखकी ज्वाला (जठराग्नि) में जलता हुआ यह मनुष्य तप्त पृथ्वी और अम्बर दो पाटों के बीच में पाषाण बनकर बैठा है। पशु तुल्य जीने वालों के टूटे फूटे घर पीछे छोड़कर अस्थि पंजर दुर्बल मानव आसुरी नगर की ओर यह भैंसा गाड़ी "चरमर-चरमर चूँ-चरर-मरर" की आवाज़ के साथ चली जा रही है।

:महादेवी वर्मा

वंग वंदना।

शब्दार्थ- वंग भू=बंग देश, शत=सौ बार, भव्य=महान; अंक=गोद; अभिषेक=अभिसिंचन; तिमिर=अंधकार; सन्तरण=तरना, पार होना, ध्वंस=नाश; हलाहल=विष; नीलकंठिनी=विषपायिनी, महादेवी।

भावार्थ वंग भूमि सौ बार तुम्हें नमन! महान भारत अमर काव्य स्रोत हमारा नमन स्वीकार करो। तू ने पहले पहल दुर्दैव की कोपाग्नि झेली है; अग्नि की लपटों

से तू ने अपना शृंगार किया है; अन्धकार-समुद्र बढ़ रहा है। तू उसे नष्ट कर पार हो आ। सबसे पहले विषपान करके तू पर्व मना रही है। हे विषपायिनी! संसार कोमल स्नेह की अनुभूति ले, तेरे इस मरण-त्योहार से काँप उठा है।

टीपः (१) बङ्गाल के भीषण अकाल के समय जिसकी बुभुक्षा में तीस लाख नर-नारी समा गये थे, महादेवी की लेखनी से ये पंक्तियाँ निर्मित हुई थीं।

(२) नीलकंठिनी समुद्र मंथन के अवसर पर शिवजी ने गरल पान करके देवताओं के लिये अमृत छोड़ दिया था; सबकी आपत्ति को अपने ऊपर ले लेने वाली बंग भूमि को इसीलिये नीलकंठिनी कहा गया है।

शब्दार्थ वेणु=वंशी; सुभर=भरे हुए; पोखर=जलाशय; निस्तब्ध=नीरव; वेला=किनारा।

भावार्थ वंशीवन में एक चीत्कार का स्वर गूँज रहा है आँखों के समान जो जलाशय पूर्ण रूप से भरे हुए थे आज घाव छाले के समान सूख गये हैं; वनमें पपड़ियाँ पड़ गई हैं; मधुर छन्दों के समान तेरे गाँव; विस्तृत खेत, लय-यति के समान थे; एकाएक इन पर विनाश का समुद्र लहरा रहा है। सब नष्ट हो रहे हैं; तू इतनी सामर्थ्य ग्रहण कर ले कि (इस विषम परिस्थिति में भी) अडिग तट सी खड़ी रह सके।

शब्दार्थ निधि=संचय; अस्थियों=हड्डियों; ठेरियाँ=ढेरियाँ जम्बुक=शृगाल, सियार।

भावार्थ वेदनायें (अश्रु के श्वास=वेदनोच्छ्वास) क्या तेरी भविष्य की आशायें जिन पर टिकी थीं, वे क्या अस्थि-पंजर के रूप में फिर रहे हैं, भटक रहे हैं। ठठरियो की ढेरियाँ

जली हैं, सियार फेरी लगा रहे हैं; तेरे संकल्प से क्या 'मृत्यु ही मृत्यु' की आवाज आ रही है। भेंट के लिये आज तू अपनी शक्ति को जागृत कर।

टिप्पणी बंगाल शाक्त प्रदेश है।

शब्दार्थ चर्चित=वेष्टित; सुमन चित्रित=पुष्प सज्जित; स्वर्णिम बालियों=स्वर्णाभा वाले अन्नलोम; धूमालियों=धूम्र गुम्फन; उलूक=उल्लू; विरद=कीर्ति; अर्घ्य=पूजा मे देने योग्य सामग्री (फल, फूल आदि); कोटर प्यालियो=गढ़े में धँसी हुई आँखें; क्रन्दन गीत=रुदन-गान; मूर्च्छना=गीत का अवरोह-आरोह; (उतार चढ़ाव)

भावार्थ सदैव (रवि) किरण वेष्टित, पुष्प-सज्जित पीले-पीले (धान्य) लोमों (शीर्षभाग) से आच्छादित, हरे-हरे खेत आज सैकड़ों चिताओं के धुएँ से धूमिल हो गये हैं। आज कपाल के गढ़े अर्घ्य-पात्र बन रहे हैं।

धान की जगह अब गिद्ध के पंख के नीचे मनुष्य मृत पड़े हैं। घर की छतों पर अब उल्लू बोल रहे हैं (अर्थात) अब वीरान हो गया है। मनुष्य का सिर नर-मांस भक्षी पक्षियों का आहार बन रहा है। आज उन सुन्दर गीतों के स्थान पर लाखों मृतप्राय नर-नारियों के मुख से कभी धीमे, कभी उच्च स्वर से हिचकियाँ निकल रही हैं; सर्वत्र आह और रुदन का साम्राज्य है।

शब्दार्थ- भृकुटि=भौं; कुटिल लिपि=वक्र रेखा; कुलिश=वज्र; अर्चि=अग्नि की शिखा; रुद्राणी=महाकाली, भैरवी।

भावार्थ ऐ महाकाली! वक्र भौंहों की प्रलय क्रीड़ा के बदले रचनात्मक क्रीड़ा कर, विनाश अब पर्याप्त हो चुका। हे

मातृ भू ! लक्ष-लक्ष मृत व्यक्तियों की हड्डियों से कुछ ऐसा वज्र निर्माण कर कि आज के वृत्रासुर (आपदायें) समूल नष्ट हो जायें। आपत्ति के घने बादल मंडरा रहे है, नील गगन अब काला हो चुका है। इस धूमिल वातावरण मे ज्योति शिखा फैला दे। हे भैरवी ! इस पराजय से निराश न हो।

शब्दार्थ तुङ्ग मन्दिर=हिमालय; कलश=चोटी; तुङ्ग—ऊँचा; अंशुमाली=(यहाँ) किरण वाला; विभा=प्रकाश; शरद-विधु=शरद का चन्द्रमा; शरद्चन्द्र चट्टोपाध्याय (बंगाल के प्रमुख उपन्यासकार); लास=नृत्य; बंकिम=टेढ़ा; बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय; पूत=पवित्र ; निर्माल्य=देवताओं को समर्पित वस्तु।

भावार्थ (१) हिमालय के उच्च शृंगों तक यशस्वी रवीन्द्र का यश व्याप्त हो रहा है, (बंग के स्वच्छाकाश को सूर्य की रश्मियाँ प्रदीप्त कर चुकी हैं)। शरद्चन्द्र की कीर्तिछटा बंगाल के घर-घर फैली हुई है। कालिमा को नष्ट कर दीप शिखा के समान बंकिम ने जहाँ अपनी अनूठी कला दिखाई, यज्ञ-धूम के समान जहाँ विवेकानन्द ने धर्म का प्रचार किया; जहाँ का प्रत्येक रज-कण चैतन्य महाप्रभु के भक्तिपूर्ण गीतों से समन्वित होकर निर्माल्य हो गया है। ऐ माता ! तेरे इन अमर पुत्रों की आराधना सदैव अक्षुण्ण बनी रहेगी।

(२) बंग के स्वच्छाकाश को सूर्य की रश्मियाँ प्रदीप्त कर रही हैं; रात्रि मे शरद्चन्द्रमा अपनी शीतल किरणें बिखेरता है; यदि इतने पर भी अंधेरा बच गया तो दीप शिखा से नष्ट हो जाता है; तेरा ज्ञान यज्ञ-धूम के समान व्याप्त हो रहा है; तेरी इस अनूठी चेतना के स्पंदन से बंगाल का रज-कण भी

वन्दनीय हो गया। देवगण कभी शिथिल न होने वाली वाणी से तेरी वन्दना कर रहे हैं।

शब्दार्थ प्रलय का ज्वार=प्रलय की बाढ़; दर्प=घमंड; उच्छ्वसित=स्पंदित; इंगित=इशारा; तिमिर=अँधेरा; सूत्रधार=नाटकारंभ में नाटक की भूमिका बताने वाला। तेरे पुत्र; सर्जना=निर्माण करना: शत अंतक=सैकड़ो काल।

भावार्थ तेरी एक पुकार पर प्रलय की आँधी तेरी विजय की घोषणा कर दे; तेरी एक हलचल से यह घमंडी संसार नत (झुक) हो जाय, तेरे प्राणों के नव स्पंदन से यह व्यथा नष्ट हो जाय, तेरे एक इशारे पर तेरे पुत्र इस अँधेरे को चीर दें; यदि नव निर्माण के लिये जुट जायँ तो ऐसे सैकड़ों काल पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

शब्दार्थ भाल=मस्तक; रक्त चंदन=खून का टीका; लाल चंदन; मंद्र=गंभीर; तूर्य=तुरही; तमसाकार=अंधकारपूर्ण; प्रखर=तेज; जाह्नवी=गङ्गा ऊर्मि=लहर; भैरवराग=एक राग (रौद्र गीत); विधात्री=निर्माण करने वाली; अर्चना=पूजा।

भावार्थ तेरे कपाल का रक्त टीका से दिन कर का नव प्रकाश फैल जावे; तेरे इस चिरंतन निर्माण से गंभीर सागर भी उद्बुध हो उठे; क्षितिज की कालिमा दूर हो जावे, सशक्त जीवन-धारा फूट पड़े। तेरे भैरव राग से गङ्गा की तरंगे उद्वेलित हो उठें, हे विधायिनी! शत-शत जागरण गीत की पूजा स्वीकार कर। हे भारत देश में ज्ञान विस्तार करने वाली, इस वंदना गीत को स्वीकार कर।

वंग भूमि शत बार तुझे नमन।
स्वर्ण भूमि सौ बार तुझे नमन॥

हरिवंशराय 'बच्चन'

कवि के बन्धन।

[१] शब्दार्थ निर्झर=झरना; जादू की साँसे; निश्चल चट्टानें=पाषाण हृदय; सरिता=भावस्रोत; लहरें मचलती हैं=भावनाएँ उठा करती हैं।

भावार्थ यदि मैं मन द्वारा नियंत्रित नहीं होता, तो मेरी जीवन-गति के सामने निर्झर का वेग भी मंद पड़ जाता।

मेरे हृदय में उमड़ने वाले भावों से युग-युग के पाषाण हृदय भी द्रवित हो उठते हैं। मेरी आत्म कहानी एक भाव तरंगिनी है, जिससे भाव लहरियां ओठों के द्वारा निःसृत होती हैं।

किसमें यह सामर्थ्य थी कि मेरी गति को अवरुद्ध कर सके; किन्तु स्वयं मैंने ही अपने लिये उलझनों का बांध तैयार कर अपनी गति कुंठित करली। यदि मेरा जीवन मन के अधिकार में न होता तो, उसके वेग से निर्झर भी लज्जित हो जाता।

[२] शब्दार्थ आँखें बिछ जाना=इच्छा होना; डरपाती=डराती; मधुप=भौंरा; मधुबन=प्रेम कुंज।

भावार्थ जब संसार की रंगीनियो का-रसास्वादन करने के लिये मेरी आंखें लालायित हो उठती हैं; तब मुझे कोई लाल पीली आँखें दिखाकर मुझे उनसे वंचित करता है।

(इच्छा तो ऐसी होती है कि) कली के समान कोमल बन जाऊँ। भौंरो की तरह मदहोश हो जाऊँ, किन्तु कौन (मन) मुझे रोक रहा है जो मेरी पहुंच वहाँ तक नहीं हो पाती। इन कोमल किन्तु मजबूत बन्धन में किसने मुझे बाँध

दिया, जो प्रणय कुंज के आमंत्रण को स्वीकार करने में मेरे पैर पीछे खींच रहा है ?

यदि मनः शक्ति के द्वारा मेरी गति निर्धारित न कर दी गई होती तो जीवन गति से निर्झर की गति भी मंद पड़ जाती।

[३] शब्दार्थ विगलित=क्षुब्ध; नीर=पानी; नभ=आकाश।

भावार्थ जब हृदय क्षुब्ध हो जाता है, तब वह किस प्रकार स्थिर (शांत) रहे, (भाव) प्रवाह को दूसरी ओर भले ही मोड़ दें, किन्तु उसकी गति रुकनेवाली नहीं; यदि पृथ्वी पर बलखाता न वह सके तो उसका ऊपर की ओर उठना स्वाभाविक ही है; किन्तु शून्य आकाश में वह कब तक स्थिर रह सकता है; यह विविध रूपिणी सृष्टि ही मेरे मन के चिंतन का विषय है; यदि मैं मन के बंधनों से मुक्त होता तो मेरे भाव निर्झर पृथ्वी तल मे ही प्रवाहित न होते वरन् इसके उस पार भी मेरी सहानुभूति रस-बूंदों के रूप मे नभ से बरस पड़ती। यदि मैं मन द्वारा नियंत्रित न होता, तो मेरी जीवन गति के सामने निर्झर का वेग भी मंद पड़ जाता।

टिप्पणी जिस प्रकार जल बिना आधार के नहीं टिक सकता, उसी प्रकार भाव के लिये भी आधार चाहिये। शून्य में भावनाएँ भी लौट आती हैं।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

हिमालय

शब्दार्थ नगपति=पर्वतराज; विराट=महान; पुञ्जीभूत=एकत्रित; जननी=मातृभूमि; हिम किरीट=एक प्रकार का सिर का आभूषण।

भावार्थ मेरे पर्वतराज ! मेरे महान ! तुम (भारत की) दिव्य महिमा के भव्य प्रतीक हो, सुसंगठित उज्ज्वल शक्ति हो, मातृ-भूमि के हिम-मंडित शिरोभूषण हो तथा भारतवर्ष के भव्य ललाट हो। हे मेरे शैलराज ! मेरे महान !

शब्दार्थ अजेय=अनुल्लंघनीय; निबन्ध=स्वच्छन्द; गर्वोन्नत=गर्व से उठे हुए; निस्सीम व्योम=अनन्त आकाश; यतिवर=श्रेष्ठ तपस्वी. निदान=समाधान, हल।

भावार्थ ऐ युग-युग से अनुल्लंघनीय, अबाधित, गर्व से ऊँचा उठे हुए चिर महान् ! तुम अनन्त आकाश मे किस गौरव का विस्तार कर रहे हो ? यह कैसा अटूट योगासन है ? हे तापस-श्रेष्ठ ! तुम किस अभंग ध्यान में मग्न, विस्तृत आकाश मे किस कठिन उलझन का हल ढूँढ़ रहे हो ? वह कौन-सी दुरूह उलझन है ? हे मेरे पर्वतराज ! मेरे महान !

शब्दार्थ यती=योगी, तपस्वी; नयनोन्मेष=आँख खोलना; दग्ध=जला हुआ; अमी=अमृत; विगलित=द्रवित; क्लान्त=दुःखी; तपी=तपस्वी; सुत=पुत्र; व्याल=सर्प

भावार्थ हे तपस्या मे मग्न मौन योगी ! क्षण भर तो निहार। ऐ हिमालय ! मातृभूमि पारस्परिक राग-द्वेष तथा

सन्तापों की ज्वाला से व्याकुल और दग्ध होकर, तेरे चरणों पर लोट रही है। जिस पवित्र भूमि मे सिन्धु, पंचनद (रावी, चिनाव, सतलज, झेलम और व्यास), ब्रह्मपुत्र तथा गंगा यमुना की अमृत धारा, जो तेरी द्रवित करुणा की प्रतीक है, प्रवाहित हो रही है। हे सीमापति (सीमा रक्षक)! तूने ही शत्रुओं को ललकार कर कहा था कि पहले मुझे खुद को छिन्न-भिन्न कर देना, तब इस (पवित्र भूमि) को रौंदना। ऐ तपस्वी! आज उसी पवित्र भूमि पर घोर सकट आ पड़ा है, तेरे पुत्र व्याकुल होकर छटपटा रहे हैं, (उन्हे) चारो ओर से अनेक आपदाएँ मानो भयंकर सप के समान डस रहे हैं। हे मेरे गिरिराज! मेरे महान्!

शब्दार्थ अशेष=अनन्त; द्रुपदा=द्रौपदी; सिकता-कण=रेत; हिमपति=हिमालय; वृन्दा=वृन्दावन; भग्नावशेष=खंडहर; अंबुधि=समुद्र, प्राची=पूर्व; ज्वाल वसन्त=जौहर।

भावार्थ कितने अनमोल रत्न लूट लिये गये; हमारा (भारतियो का) कितना अनन्त ऐश्वर्य नष्ट हो गया! किन्तु इतने पर भी तेरा ध्यान भंग न हुआ और भारतवर्ष उजाड़ हो गया। इसी बीच कितनी ही भारतीय ललनाओं की लज्जा द्रौपदी के केश-कर्षण के समान लूट ली गई! कितनी अब विकसित कलियाँ (युवती होने वाली कन्याएँ) असमय ही नष्ट हो गईं। चितौड़! तू स्वयं अपने मुँह से कह दे कि इस भूमि मे कितनी बार जौहर की आग से (जिसमे राजपूत स्त्रियाँ अपने चरित्र के रक्षार्थ कूद पड़ती थी) खेलना पड़ा! हे हिमालय! (इस मरुभूमि) के रेत-कणो से तू स्वय पूछ ले कि तेरा वह अतीत का नवोन्मेषशाली राज्य-स्थान कहाँ है? जंगल-जंगल स्वतन्त्रता की ज्योति के लिये मरने वाला शक्ति

शाली (प्रताप) अब कहाँ है ? तू स्वयं अवध से पूछ ले कि कौशल किशोर कहाँ है ? वृन्दावन तुम्हीं बताओ कि तुम्हारा घनश्याम कहाँ है ! ऐ मगध ! तेरे चक्रवर्ती सम्राट अशोक तथा महान् सामर्थ्यशाली चन्द्रगुप्त कहाँ है ? आज समृद्धिशालिनी सुकुमारी मिथिला भिखारिणी-वेश में तेरे चरणों पर लोट रही है। तू पूछ कि इसने अपनी असीम समृद्धियाँ कहाँ गवाँ डाली ? ओ कपिल वस्तु ! तू स्वयं कह कि भगवान बुद्ध के कल्याणकारी उपदेश का प्रवाह कैसे लुप्त हो गया ? तिब्बत, ईरान, जापान, चीन तक फैले हुए उनके संदेश वहाँ से कैसे विलीन हो गये ? वैशाली के खंडहरों से पूछ ले कि लिच्छवी राजाओं का वैभव कैसे नष्ट हो गया ? अरी उदास गंडकी ! तू ही बता दे कि मैथिल कोकिल विद्यापति के गीत क्यों नहीं सुनाई पड़ते ? तू इस तरुण देश से स्वयं पूछ ले कि (असमय ही) यह प्रलय रागिनी कैसे बज उठी ? समुद्रतल के बीच में यह कैसी बड़वाग्नि सुलग रही है। पूर्व के आँगन बीच देख कि युग-युग का वैभव अग्नि की ज्वाला-सा कैसे जल रहा है ? ऐ योगी ! सजग होकर तू हुङ्कार दे ! ऐ मेरे शैलराज ! मेरे महान !

शब्दार्थ गांडीव = अर्जुन का धनुष ; निनाद = हुङ्कार; धरा = पृथ्वी; कुहा = अन्धकार; प्रमाद = भ्रान्ति, अन्तःकरण की दुर्बलता।

भावार्थ ऐ धीर ! धर्मराज को रोकना अभीष्ट नहीं, वे स्वर्ग सिधारें तो सिधारें किन्तु हमें गाण्डीव और गदा की शक्ति तथा अर्जुन और भीम जैसे वीर योद्धाओं को फिर से लौटा दे। तू आज शंकर से कह दे कि एक बार फिर वे ताण्डव नृत्य करें (जिससे संसार में उथल-पुथल मच जाय), जिससे सम्पूर्ण

भारत में हर-हर-बम का नभोनोषशाली घोष गूञ्ज उठे। अल-साई पृथ्वी आलस्य त्याग करके अपने भव्य स्वरों में गर्जन कर! सत्य हिमाद्रि! तू ऐसा हुङ्कार-भर दे कि सारा अन्धकार (अज्ञानता) दूर हो जाय, भ्रान्ति (अन्तःकरण की कमजोरी) नष्ट हो जाय। ऐ योगिराज! तू मौन त्यागकर, गर्जन कर, आज तपस्या का समय नहीं संग्राम के लिये नवयुग शंखध्वनि बज उठी है। मेरे महान्! तू जाग जा, चैतन्य हो जा, मेरी मातृभूमि के हिममंडित शिरोभूषण! मेरे भारतवर्ष के भव्य भाल! पर्वतराज! ऐ महान्! तू जाग, जाग!!

कवियों का आलोचनात्मक परिचय

कवियों का परिचय लिखते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि उनकी शैली और काव्यगत विशेषताओ की पूरी जानकारी विद्यार्थियो को हो जाय। प्रस्तुत परिचय में केवल गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर, जिनके विषय मे स्वयं मञ्जरीकार ने पर्याप्त लिख दिया है, शेष सब कवियों का विवेचनात्मक परिचय दे दिया गया है। मञ्जरी में वर्णित कवि सम्बन्धी ज्ञातव्य बातें यथा संभव न दुहराने की चेष्टा की गई है।

लेखक

कबीरदास

कबीर मे महाकवि बनने की प्रतिभा थी, किन्तु इच्छा नहीं। उन्होंने साहित्य के लिये नहीं गाया; कवि की हैसियत से नहीं लिखा, चित्रकार की हैसियत से चित्र नहीं खींचे। यही कारण है कि वे काव्य-शास्त्र के किसी विभाग में नहीं आते।

यद्यपि कबीर ने 'मसि कागद' छुआ भी नहीं जैसा वे स्वयं कहते हैं

मसि कागद छूऔं नहीं, कलम गहौं नहिं हाथ।
चारि जुग का महातम, कबिरा मुखहि जनाई बात॥

तथापि उसके विचारों की समानता रखने वाले कितने कवि हुए हैं। कबीर की कल्पना के सारे चित्रों को समझने की शक्ति किसी पाठक में आ सकेगी इसमें सन्देह है।

डॉक्टर रामकुमार वर्मा के शब्दों मे, "कबीर अपनी आत्मा का सब से अज्ञाकारी सेवक था। उसकी आत्मा से जो ध्वनि निकली उसका निर्वाह उसने बहुत खूबी के साथ किया। उसे यह चिन्ता नहीं थी कि लोग क्या कहेंगे, उसे यह भी डर नहीं था कि जिस समाज मे मैं रह रहा हूँ उस पर इतना कटुतर प्रहार क्यो करूँ?"

कबीर का व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था। कबीर-साहित्य के अधिकारी विद्वान् डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण एक वाक्य मे कर दिया है

"वे सिर से पैर तक मस्त-मौला थे बे परवाह, दृढ़, उग्र 'कुसुमादपि कोमल वज्रादपि कठोर' (याने फूल से भी कोमल. वज्र से भी कठोर)।"

हिन्दी-साहित्य के पिछले हजार वर्षों के इतिहास मे, कबीर के व्यक्तित्व की समता किसी साहित्यकार से नहीं दी जासकती। महिमा मे भी उनके कोई प्रतिद्वन्द्वी है तो केवल तुलसीदास।

वे मूलतः भक्त थे और थे वह धर्म गुरु। किन्तु उनकी वाणी का अध्ययन काव्य रूप में कम नहीं हुआ; समाज-सुधारक भी वे माने गये, कबीरपंथ के चलाने वाले भी वे बन गये, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य-विधायक के रूप मे भी उनकी चर्चा कम नहीं हुई।

कवि बनने की इच्छा न रहने के कारण, कबीर ने शास्त्रीय

छंद नहीं चुने, अलंकार विधान की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया। जो कुछ आये हैं स्वभाव तथा चले आये हैं।

भाषा पर कबीर का पूर्ण अधिकार था। जो लोग कबीर की वाणी में 'गँवारूपन' का आरोप करते हैं उन्हें डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का केवल एक कथन चुप करा सकता है, "वे (कबीर) वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप मे कहना चाहा है, उसी रूप मे उसे कहलवा लिया है, बन गया है तो तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है।......फिर व्यंग्य करने में और चुटकी लेने मे भी कबीर अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानते। पंडित और काजी, अवधू और जोगिया, मुल्ला और मौलवी; सभी उनके व्यंग्य से तिलमिला जाते है। अत्यंत सीधी भाषा मे वे ऐसी गहरी चोट करते हैं, कि चोट खाने वाला केवल धूल झाड़कर चल देने के सिवा और कोई रास्ता नहीं पाता।"

रहस्यवादी कबीर के आध्यात्मिक भावों को समझने के लिए गम्भीर पैठने की जरूरत है। ऊपर-ऊपर सतह पर चक्कर काटने वाले समुद्र भले ही पार कर जॉय, पर उसकी गहराई की थाह नहीं पा सकते।

कई कवि बनाने का यत्न करते-करते थक गये, पर सफल नहीं हो सके; किन्तु कबीर इच्छा न रहते हुए भी अनायास केवल कवि नहीं महाकवि बन गये और होगये हिंदी के नव रत्नों मे से एक।

सूरदास

'सूर सूर तुलसी ससी' की अत्यंत प्रचलित पंक्ति हमें यह बताती है कि सूर और तुलसी की युगल जोड़ी हिंदी साहित्य-गगन के सूर्य और चंद्रमा हैं।

तुलसी की अक्षय कीर्ति का कारण यदि 'राम चरित मानस' है तो सूर के यश का कारण 'सूर सागर' है। तुलसी ने अनेक ग्रंथ लिखे, किन्तु सूरदास रचित तीन ही ग्रंथ माने जाते हैं : सूरसागर, सूर सारावलि और साहित्य-लहरी। इनमें से शेष दो तो स्वतंत्र ग्रंथ होने के बजाय, सूरसागर के ही अंश हैं। यह प्रसिद्ध है कि 'सूरसागर' की पद-संख्या सवालाख है। किन्तु अबतक की प्राप्त प्रतियो मे पाँच हजार से अधिक पद किसी मे भी नहीं मिलते।

माता और संतान के बीच जो स्नेह है, स्त्री और पुरुष में जो प्रेम है और जीव और ब्रह्म के बीच जो आकर्षण है, ये तीनों ही सूरदास के काव्य के विषय हैं। वास्तव मे सूर का समस्त साहित्य वात्सल्य, दाम्पत्य और भगवत्प्रेम के अंतर्गत आजाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों मे " 'वात्सल्य' और 'शृंगार' के क्षेत्रो का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखो से किया उतना और किसी कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झाँक आये।......हिंदी-साहित्य मे शृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने।" भक्त तो वे मूलतः थे ही। भक्तों की दृष्टि में तो उनके शृंगार-रसात्मक पद भी भक्ति-रसात्मक प्रतीत होते हैं। एक प्रकार से सूर-सागर भक्ति के अनेक प्रकारों का उदाहरण है।

सूर की भक्ति की गहराई का अनुमान उनकी निम्न लिखित पंक्ति से ही हो सकती है

“तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।”

अथवा

‘हमें नदनंदन मोल लिये।”
‘मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै’ तथा
“छाँड़ मन हरि विमुखन को संग”

जैसी पंक्तियाँ सूर की अनन्य भक्ति के ही स्रोत हैं। सूर की भक्ति सखा भाव की है जबकि तुलसी की दास्य भाव की।

जिन महा कवि की लेखनी के वर्णित कृष्ण ये बाल-चरित्र के वर्णन से हिंदी में ‘वात्सल्यरस’ की सृष्टि हुई, उनकी एकाध पंक्ति देकर कवि के वात्सल्य चित्रण की कुशलता दर्शाना अत्यंत कठिन काम है। शैशव से लेकर कौमार अवस्था तक के क्रम से लगे हुए न जाने कितने चित्रों का निर्माण कवि के कुशल हाथों से हुआ है। सब एक से एक बढ़कर। देखिये बाल-स्पर्धा का भाव इन वाक्यों मे किस प्रकार व्यंजित हो रहा है

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहत बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबो मोटी।।

सूर ने शृंगार के संयोग-वियोग, दोनों पक्षों का इतना विस्तार के साथ वर्णन किया है कि इस का कोई अङ्ग नहीं छूटने पाया है। ‘भ्रमर गीत’ सूरसागर की सर्वोत्कृष्ट रत्न राशि है। गोपियों को इसके बिना कोई चीज अच्छी नहीं लगती। वे मधुवन से झल्ला कर पूछती हैं; उसके हरे भरे पेड़ों को कोसती हैं

मधुबन तुम कत रहत हरे ?
बिरह-वियोग स्याम-सुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे ?

इसी प्रकार रात उन्हें साँपिन सी लगती है ।

"पिय बिनु साँपिनी कारी राति ।"

सूर-सागर के सभी पद गेय हैं । इस अंधे कवि के मुख से वीणा के साथ जो स्वर निकला वही गीत बन गया । इसीलिये आज भी सूर के पदों के गीति माधुर्य से संगीत-प्रेमी झूम उठते हैं । सूरदास ब्रजभाषा के सर्व श्रेष्ठ कवि हैं ! यह सूर की भाषा का ही गुण है कि एक ही लीला पर अनेक पद होते हुए भी पाठक को अरुचि नहीं होती । उनकी भाषा भाव की अनुगामिनी है । वास्तव मे रसानुकूल भाषा लिखने में सूर सिद्ध-हस्त हैं । पद लालित्य की दृष्टि से हिन्दी के महाकवि मे सूर का स्थान सर्वोच्च है ।

केवल नाम और उदाहरण दे देने से सूर के अलंकारों का पूरा-पूरा मूल्य नहीं आँका जा सकता । इन्होंने कठिन अलंकारों को प्रयोग प्रायः नहीं किया । किन्तु सूर चाहे सीधी-सादी भाषा मे सौंदर्य की रचना करें, चाहे उपमा-उत्प्रेक्षा आदि से भरी हुई आलंकारिक भाषा में, वे सर्वत्र सफल हुए हैं । शब्दालंकारों में सूर ने यमक, अनुप्रास आदि का विशेष प्रयोग किया है ।

सूरसागर वास्तव मे एक अपूर्व ग्रंथ है । यह प्रेम, काव्य तथा संगीत की त्रिवेणी के रूप मे मिलकर अंत मे सागर में परिणत हुआ है । यह रत्नाकर है इसका एक-एक पद एक-एक रत्न है ।

मीरा बाई

राजस्थान की वीर-भूमि में, सब रूढ़ियों का त्याग करने वाली, समाज द्वारा लांछित, परिवार से तिरस्कृत और लोगों की नजरों मे 'पगली रानी' मीरा ने भक्ति की गंगा बहा दी जिसमे सारा प्रदेश डूब गया।

मीरा का जीवन कृष्ण के पवित्र प्रेम का सुन्दर इतिहास है। वह राजकन्या थी, राज रानी हुई, किन्तु अपनी इच्छा से, राज महल तथा राज सुख छोड़, वह दरिद्रता की उपासिका बनी। मीरा की वाणी मे कृष्ण के वियोग का अनुभव ही फूट पड़ा है। स्वतः अनुभव की हुई 'प्रेम की पीर' का चित्रण जितनी सुन्दरता से मीरा ने किया है, उतना कोइ दूसरा न कर सका। उसने तन का दिया बनाया और मन की बत्ती बॉट कर उसमे रखी। बत्ती स्नेह मे डुबो दी गई और वह दिन-रात जलती रही

या तन का दिवला करूँ, मनसा की बाती हो।
तेल जगाऊँ प्रेम को, बलूँ दिन राती हो।।

मीरा ने अपने पर आरोपित समस्त दुःख-लाँछना को चुपचाप सह, अंत मे अपने जीवन को आदर्श बना डाला। उसके लिये वह शांति और दृढ़ता का केन्द्र बना और हमारे लिये अनेक भावों की जननी। राणा का विष भी उसे अमृत हो गया। दुःख उसके लिये वरदान हो गया। देखिये

'राणा विष को प्याला भेज्यो पीय मगन होई।'

मीरा प्रेम-मार्ग से चलकर अपने प्रियतम, कृष्ण, से मिलना चाहती थी। उसने सांसारिक सम्बन्ध की बाधा को स्वीकार नहीं किया। जब उसे असह्य हो गया तो उसे छोड़ भी दिया।

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो, सकल लोक जोई ॥

वह गिरिधर के प्रेम मे रँग गई थी —

भाई छोड्या बन्धु छोड्या छोड्या सगा सोई।
साधु संग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई ॥

वह गिरिधर के प्रेम में रंग गई थी —

सखी री मैं तो गिरिधर के रँग राती।

वह कृष्ण की हो गई थी, कृष्ण उसके

माई री, गोविन्द लीनो मोल।

मीरा की उपासना माधुर्य भाव की थी। भाव की वह मधुरता उसकी भाषा मे भी उसी रूप मे स्पष्ट है। उसका प्रेम संगीत-स्रोत के साथ फैला है। प्रोफेसर श्री रामलोचन शरण के शब्दों मे कह सकते हैं, "संगीत उसकी (मीरा की) काव्य-कला की विशेषता है और काव्य-कला उसके संगीत-प्रेम को उल्लासित करती है।" इसीलिये सूर के पदों की भांति मीरा के पद भी वर्तमान गायकों की वाणी पर विराजते हैं। उसका 'मलार' राग तो भारत में प्रसिद्ध है।

मीरा तो अमर-पति के गीत गाती रही। वही आकुलता उसके काव्य की काकली होगई। श्री नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में, "वह (मीरा का काव्य) अलौकिक प्रेम और विरह से भींगे हुए हृदय का उद्गार है। उसमें काव्य-कला की बारीकियाँ हमें नहीं मिलतीं, मूर्तिमान विरह की तड़प और क्रन्दन सुन पड़ते हैं।"

मीरा की अधिकान्श रचनाओं की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है। उनकी कुछ रचनाएँ शुद्ध राजस्थानी में भी हैं, कुछ ब्रजभाषा मे भी। अलंकार का चमत्कार मीरा की रचना में नहीं मिलेगा, परन्तु भावों की सुकुमारता और सरलता उसकी विशेषता है।

इन्हीं सब विशेषताओं के कारण, हिन्दी-काव्य-गगन में मीरा, स्वय प्रकाशित नक्षत्र की भांति, कभी न घटने वाली ज्योति लिये, आज भी पूर्ववत प्रकाशमान हैं।

बिहारी

गोस्वामी तुलसीदास की रामायण को छोड़ कर और कोई भाषा-ग्रंथ इतनी लोक-प्रियता न पा सका, जितनी महाकवि बिहारी के एक-मात्र ग्रंथ बिहारी सतसई ने पाई है।

सतसई कोई बहुत बड़ा ग्रंथ नहीं है। इसमें सिर्फ ७१७ दोहे हैं। साथ मे दो तीन सोरठे है। इनके अतिरिक्त सात दोहों मे सतसई की प्रशसा की गई है, जो संभवतः किसी अन्य कवि के बनाये गये हो। फिर भी उनका एक-एक दोहा अपना अलग अस्तित्व रखता है। इसी कारण सतसई से अपरिचित व्यक्ति भी इस दोहे को

सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक की तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करैं गभीर॥

अवश्य जनता है।

दोहा एक बहुत ही छोटा छंद है, अतः उसमे यह गुण है कि थोड़ी सी भी उत्तमता होने से वह चमक उठता है। रहीम ने भी कहा है

दीरघ दोहा अरथ के, अखर थोड़े आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ जाहिं॥

इस कारण भी विहारी के दोहे बड़े भले लगते हैं और उनका यश उज्ज्वल बनाये हुए हैं।

अनुमान है कि बिहारी ने हजारों दोहे बनाये होंगे, उनमे से ये सात सौ दोहे चुन लिये गये। किंतु इसी एक छोटे से ग्रन्थ के इस महाकवि ने मानो गागर मे सागर भर दिया है। इन्हीं १४५२ पंक्तियों में मानो सभी कुछ आ गया है और कविता का प्रायः कोई अंग, सिवा पिंगल के, नहीं छूटा।

काव्य का यह छोटा-सा खजाना पाठक को चकित और स्तंभित कर देता है। इतने छोटे से ग्रन्थ मे इतना चमत्कार अन्य कोई भी हिन्दी कवि नहीं ला सका।

केवल एक छोटे से ग्रन्थ सतसई के आधार पर बिहारी की इतनी प्रसिद्धि इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि स्थायी कीर्ति परिमाण द्वारा नहीं मिलती। कम्बल तौल मे भले ही ज्यादा हो पर मोल मे तो दुशाला ही अधिक है।

विहारी रीतिकाल के कवि थे। इस युग मे कवियों के लिये एक मात्र रस शृङ्गार ही रह गया था। विहारी ने शृङ्गार का इतना विशद चित्रण किया है कि वे अपने युग के श्रेष्ठतम कवियों मे गिने जाते हैं और हिन्दी के नवरत्नों मे तो उनका नाम सुरक्षित है ही।

सतसई ब्रजभाषा में है, परन्तु फिर भी उसमें कई भाषाओं के शब्दों का अधिकता से प्रयोग हुआ है। सतसई में शब्दों का प्रयोग बड़े अनूठे ढंग से, वजन तौलकर किया गया है। थोड़े में गंभीर अर्थ प्रकट करने वाले सुन्दर शब्दों की सजावट, रसानुकूल भाषा का प्रवाह, मुहावरों के सफल प्रयोग सभी कुछ दर्शनीय हैं।

अलंकारों के बोझ से जब कि रीतिकाल के अनेक कवियों के भाव दब-से गये हैं, वहाँ विहारी के काव्य में अलंकार और भाव दोनों का सर्वत्र सुन्दर निर्वाह हुआ है।

विहारी ने अतिशयोक्ति में कलम तोड़ दी है, विशेषतः कोमलता, उज्ज्वलता और विरह के वर्णन में। एक उदाहरण लीजिये

लिखन बैठि जाकी छबिहिं, गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥

इनके पद्य इतने अच्छे हैं कि बहुत से मसले से हो गये हैं यथा।

'बातें हाथी पाइये-बातें हाथी पाँव' इत्यादि।

विहारी ने बहुत-सी बातों का वर्णन किया है परन्तु श्री को पद रत्न से अधिक चित्ताकर्षिणी मानते थे -

यक भीजै, चिहले परे, बूड़े बहे हजार।
किते न अवगुन जग करे नेवे चढ़ती बार॥

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

इस बात मे कोई मतभेद नहीं हो सकता कि हिन्दी के इतिहास मे भारतेन्दु हरिश्चंद्र 'आधुनिक-युग' के जन्मदाता हैं। पद्य के एक पैर पर खड़े हिन्दी-साहित्य को आपने गद्य का सबल एवं पुष्ट पैर प्रदान किया।

जिस समय लोगो के मन मे हिन्दी के प्रति घृणा के भाव उत्पन्न हो रहे थे, उसी समय भारतेन्दु हरिश्चद्र ने हिन्दी मे एक संजीवनी शक्ति का संचार कर, लोगो के हृदय मे हिन्दी के प्रति अनुराग उत्पन्न कर दिया। भारतेन्दु के पूर्व संस्कृतमिश्रित हिंदी तथा फारसी मिश्रित हिन्दी मे से कौन सा रूप साहित्य मे स्वीकार किया जाय, यही द्वन्द्व चल रहा था। इनकी दूर दर्शिता और प्रतिभा जन्य भाषा-प्रयोग का मध्यम मार्ग बड़ा ही मंगलकारी तथा व्यावहारिक सिद्ध हुआ।

भाषा सम्बन्धी संस्कार के अतिरिक्त गद्य-साहित्य की रूप रेखा और भंडार भरने मे भारतेन्दु का बड़ा हाथ था। इन्होने हिन्दी साहित्य के कई अंगो को जन्म दिया और सभी अंगो की उन्नति की। ग्रियर्सन साहब का विचार है कि वे उत्तर भारत के सबसे पहले समालोचक थे। निबंध इन्होने लिखे, और खूब लिखे। 'कवि वचन सुधा' 'हरिश्चंद्र-मेगजीन (जो आठ संख्याओ के उपरांत 'हरिश्चद्र-चंद्रिका' नाम से प्रकाशित होने लगी) तथा 'बाला-बोधनी' का संपादन कर पत्रकारिता का आदर्श भी इन्होने प्रस्तुत किया। हिदी के तो आप प्रथम मौलिक नाटककार थे ही।

वे एक श्रेष्ठ साहित्यकार तो थे, साथ ही साथ लेखको का

एक मंडल भी उन्होंने तैयार कर लिया। उनमें से प्रतापनारायण मिश्र, जगमोहन सिंह तथा बालकृष्ण भट्ट जैसे उच्चकोटि के साहित्य कार भी हो गये हैं। अपने समय में भारतेन्दु हिंदी गगन के चंद्रमा हो रहे थे। इसीलिये यह काल 'भारतेन्दु-युग' के नाम से पुकारा जाता है।

चाहे यह सर्वसाधारण को विदित न हो, किन्तु वे एक सुन्दर कवि थे; और उनका कवि रूप, नाटककार तथा गद्य-लेखक से किसी प्रकार कम नहीं। भारतेन्दु जी के काव्य में नवीन युग की प्रवृत्तियों के सूत्र पात के साथ हम प्राचीनता की छाप पूर्ण रूप से पाते हैं। भारतेन्दुजी ने अपने जीवन काल में पद्य के स्वरूप में विशेष परिवर्तन नहीं किया। नवीन विषयों की ओर संकेत करके उन्होंने उनकी अभिव्यंजना-पद्धति में नवीनता का केवल आभास भर दिया।

भारतेन्दु जी केवल ब्रजभाषा में ही कविता नहीं करते थे किन्तु खड़ी बोली में भी उन्होंने कविताएँ लिखी हैं। फिर भी उन्होंने विशेष रूप से ब्रजभाषा को ही अपनाया था। इसका कारण या तो ब्रजभाषा के माधुर्य का मोह था, या तब तक खड़ी बोली का साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन न होना और उसका माधुर्य प्रकट न होना था।

भारतेन्दु जी का ध्यान शब्द वैचित्र्य की ओर अधिक था किन्तु कुछ कविताएँ बहुत ही उत्तम बन पड़ी हैं। 'गेयत्व' उनकी कविता का प्रधान गुण है। उनके अधिकांश काव्य में संगीत का बड़ा सुन्दर समीकरण हुआ है।

भारतेन्दु जी ने बहुत बड़े परिमाण में कविता की है। उनके नाटकों में काव्य भरे पड़े हैं। 'यमुना छवि' भी, जो कवि की

कल्पना का खजाना खोल देता है, चन्द्रावली नाटक से उद्धृत की गई है।

भारतेन्दु की सभी रचनाएँ उच्च कोटि की नहीं कही जा सकतीं। किन्तु चन्द्रावली की कविता सर्वथा प्रशंसनीय है। इसमें हरिश्चन्द्र जी की कवित्व-शक्ति का अच्छा विकास हुआ है।

भारतेन्दु का समस्त काव्य 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' के नाम से नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसमे पहले तो इकीस काव्य-ग्रन्थ संग्रहीत है और तत्पश्चात् पचास छोटे प्रबंध तथा मुक्तक कविताएँ। उनके इस ग्रन्थ का अवलोकन करके पाठक सहज ही इन पंक्तियों जैसी पंक्तियों को याद किये बिना नहीं रहता :

क कान्ह भये प्रान मय, प्रान भये कान्ह मय,
हिय में न जानी परै, कान्ह हैं कि प्रान हैं।

ख आजुलौं जो न मिले तो कहा,
हम तो तुम्हरे सबभाँति कहावैं।
मेरो उराहनों है कछु नाहिं,
सबै फल आपने भाग को पावैं!
जो हरिचद भइ सो भई,
अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति,
विदा के समय सब कण्ठ लगावैं॥

मैथिली शरण गुप्त

गुप्त जी खड़ी बोली के सबसे अधिक लोक-प्रिय कवि हैं। उनके काव्य का विषय अत्यंत व्यापक है। उनकी कृतियों की निम्नलिखित मुख्य-मुख्य दिशाएँ हैं (१) राष्ट्रीय (२) राम-कृष्ण भक्ति-सम्बन्धिनी (३) ऐतिहासिक और पौराणिक और (४) नारी-भावना। उन्होंने राष्ट्रीयता की शंख ध्वनि के साथ ही कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया और उसी का नाद सबसे ऊँचा भी है। राष्ट्रीयता कवि का विशेष उद्देश्य रहा है किन्तु वह संस्कृति-शून्य राष्ट्रीयता के पोषक नहीं है। इतने पर भी गुप्त जी अपने को केवल 'कौटुम्बिक कवि' कहते हैं। देखिये

जाति बड़ी है, देश और भी
बड़ा, विश्व का क्या कहना।
जल में, थल में और गगन मे
मैं हूँ कौटुम्बिक कवि मात्र॥

गुप्त जी जो कुछ लिखते हैं कुछ उद्देश्य रखकर ही स्वांतः सुखाय, नहीं

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।"

कवि का हृदय नारी के प्रति अत्यंत उदार है। गुरु वाल्मीकि भी जिस उर्मिला के प्रति मौन रहे, उसी के प्रति श्रद्धाञ्जलि लेकर गुप्त जी 'साकेत' मे आते हैं। महात्मा बुद्ध की कीर्ति के सामने चिर उपेक्षिता यशोधरा के यथार्थ महत्व का प्रदर्शन कवि ने अपनी 'यशोधरा' मे किया है। लांछिता कैकेयी

का चित्रण इतनी सफलता से किया है कि पाठकगण स्वयं ही उसे क्षमा किये बिना नहीं रह सकते। और फिर श्री राम के कहने पर कैसे चुप रहा जा सकता है ?

"पागल सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई।
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।
जिस जननी ने है जना भरत सा भाई॥"

गुप्त जी ने अबला-जीवन की युग-युग की कहानी केवल दो पंक्तियों मे कह दी है

'अबला-जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध और आँखों में पानी।'

कोई भी विषय हो, कोई भी प्रसंग हो, कवि अपने राम को नहीं भूलता। रामकी जय मनाये बिना उसके लिये किसी काव्य का प्रारम्भ करना भी असम्भव है

"धनुर्बाण या वेणु लो
श्याम रूप के संग
मुझ पर चढने से रहा
राम दूसरा रंग।"

प्रोफेसर विनय मोहन शर्मा के शब्दों मे कह सकते हैं, "आप, आधुनिक खड़ी बोली कविता के जीवित इतिहास हैं। 'समय' चाहे जितनी तेजी से भागे, आप कभी 'दौड़' मे पीछे नहीं रहे। 'समय' ने जब जिस स्वर की माँग की, आपने उसे अपना कंठ प्रदान किया।"

गुप्त जी की " सर्वसाधारण के कवि" के रूप मे ख्याति का एक कारण उनकी भाषा रही है। उनका शब्द-भंडार अत्यन्त विस्तृत है। उनकी भाषा मे विदेशी शब्दों का समावेश बहुत कम हुआ है। संस्कृत तत्सम शब्दो का प्रयोग अधिक मिलता है किन्तु उन्होने जहाँ तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है वहाँ भाषा अधिक स्वाभाविक हो गई है। उनकी सब रचनाओ मे भाषा का रूप एक सा है। उनकी भाषा में मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग कम मिलते हैं, और जहाँ कहीं प्रयोग किया भी है वहाँ रूपान्तरित कर दिया है, जिससे चमत्कार घट जाता है, यथा-

मनः प्रसाद चाहिये केवल
फिर कुटीर फिर क्या प्रासाद ?

यहाँ 'मन चंगा तो कठौती मे गंगा' को विकृत कर देने से उसका सारा सौंदर्य नष्ट हो गया है। गुप्त जी की भाषा की एक विशेषता यह भी है कि व्याकरण सम्बन्धी भूलें देखने में नही आतीं। उनकी भाषा स्पष्ट, सरल और भावगम्य होती है।

गुप्त जी ने सभी प्रचलित शैलियों पर रचना की है, किन्तु प्रबन्धात्मक शैली मे विशेष सफल हुए हैं; किसी कहानी को लेकर वे अच्छा लिख सके हैं। भाषा की भावानुरूपता, सरलता, आकर्षण-शीलता और सुन्दर कल्पनाएँ सब कुछ उनकी शैली मे हैं। उन्होने वर्णिक और मात्रिक दोनो तरह के छन्दों का प्रयोग किया है। उनके छन्दों का चुनाव भी उन्हें लोकप्रिय बनाने मे सहायक हुआ है।

इन्हीं सब विशेषताओ के कारण गुप्त जी सब को प्रिय हैं, प्राचीनतावादियो को भी नवीनतावादियों को भी।

आज भी गुप्त जी की लेखनी क्रियाशील है, और साठ वर्ष की अवस्था मे अपनी 'हीरक जयन्ती' के अवसर पर जब वे कहते है कि

प्रेरक हों राम तो जयंत से भी होड़ लूँ।
चाहता हूँ अपने को हिन्दी पर तोड़ दूँ॥

तब राष्ट्र वाणी हिन्दी को और राष्ट्र को अपने महान राष्ट्रीय कवि से बड़ी-बड़ी आशायें क्यों न हो?

माखन लाल चतुर्वेदी

चतुर्वेदी जी मूलतः कवि होते हुए भी, एक अच्छे गद्य लेखक और सफल वक्ता हैं। उन्हें राजनीति से प्रेम है। सच पूछिये तो राजनीति के नीरस वातावरण मे रहकर रसमयी कविता लिखने वाले, हिन्दी में माखन लाल चतुर्वेदी को छोड़कर एक ही दो और है जिनमे बाल-कृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा सुभद्रा कुमारी चौहान प्रमुख हैं।

किन्तु राजनीति के कारण उनकी ख्याति नहीं हुई और न राजनीति ही यह दावा कर सकती है कि उसने इस 'भारतीय आत्मा' से अपना प्रचार करवाया है। एक श्रेष्ठ राष्ट्र कर्मी होते हुए भी, प्रांत की राजनैतिक परिधि मे उनके लिए आज कोई स्थान नही है। कवि के मानस-समुद्र मे राजनीति डूब गयी है। दिनकर के शब्दो मे कह सकते है, "जिसकी गन्ध से हम प्रमुदित और प्रमत्त हैं, वह स्पष्ट ही साहित्य का फूल है,

राजनीति तो पौधे की जड़ के नीचे मिट्टी मे गल कर खाद की विलीन हो गयी।"

द्विवेदी काल के प्रभाव से मुक्त चतुर्वेदी जी नवीन धारा के प्रथम कवि है। जो पराधीन राष्ट्र को स्वाधीन देखना चाहता हो, वह देश के लिए अपना जीवन न्यौछावर करे। माखन लाल जी की प्रत्येक मनोदशा मे वलिदान की मधुरता किसी न किसी रूप से अवश्य वर्तमान रहती है। उनके लिए स्वय मरण भी एक त्योहार है क्योकि यही वलिदान की पूर्णता है। देखिये

"जम्बुकेश, चलो,! जहाँ सहार है,
वन्य पशुओं का लगा वाजार है!
आज सारी रात कूकेंगे वहाँ,
मोम दीपों का मरण त्योहार है!!"

उनकी 'अभिलाषा' देखिये

"मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृ भूमि पर शीश चढाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक॥'

दमन जनित कष्टों को उन्होंने प्रेम से स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि से शूली मे भी एक अनिर्वचनीय आनंद है।

'क्या? देख न सकती जजीरों का पहना?
हथकड़ियाँ क्यों? यह वृटिश राज का गहना!
मिट्टी पर? अंगुलियों ने लिक्खे गान!
कोल्हू का चरखा चूँ?— जीवन की तान!

अथवा

'रस उसका जिसकी तरुणाई
रस उसका जिसने सिर सौंपा
आओ गले लगो ऐ साजन
रेतो तीर कमान सम्हालो ।'

देखिये, श्रीयुत् भगवती प्रसाद वाजपेयी क्या कहते है,

“उनकी (चतुर्वेदी जी की) 'मरण त्यौहार' और 'कैदी और कोकिला' जैसी कविताएँ हमारे वासनाकाल की अवशेष स्मृतियों सी अमर रहेगी और इस कारागार प्रवासी कष्ट साधक कवि को भूलने न देगी । - -- चतुर्वेदी ने वहुत लिखा है और हमारे साहित्य के युग-निर्माता न होते हुए भी अपने एक विशेष स्कूल के नेता तो वे है ही ।”

जयशंकर 'प्रसाद'

प्रसाद जी आधुनिक हिंदी-जगत् की सर्व श्रेष्ठ प्रतिभा थे । स्कूल और कालेज की शिक्षा से वंचित रहने पर भी, आप अनन्य आर्य और उन्नत संस्कृति के वौद्ध थे । साथ ही वे दार्शनिक, इतिहासज्ञ, पंडित, कलाकार और संगीतज्ञ थे ।

वचपन से ही काव्य की ओर रुचि होने के कारण पहले वह कवि हुए, फिर नाटक-कार, कहानी और उपन्यास लेखक और अत मे निवंध लेखक । किन्तु प्रसाद जी मुख्यतः कवि थे, गद्य मे भी, पद्य मे भी ।

प्रसाद जी आधुनिक हिन्दी काव्य के सर्वोच्च कवि और युग-निर्माता थे। उन्होंने 'द्विवेदी-युग' के नीरस काव्य को 'स्वस्थ-प्रेम' दिया। हिन्दी को उन्होंने नई कल्पना, नये छंद, नई भाषा और नया विषय दिया। अतुकांत कविता का प्रयोग भी सबसे पहले उन्होंने ही किया।

श्री विनोद शंकर व्यास के शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि यदि आधुनिक हिन्दी साहित्य से प्रेमचन्द और प्रसाद की समस्त रचनाएँ हटा दी जायँ, तो उसमें कुछ नहीं रह जायगा।

प्रसाद की 'कामायनी' सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है, रहस्यवाद का तो प्रथम ही। आँसू इनका मास्टर पीस प्रतिनिधि रचना है। लहर, झरना, महाराणा का महत्व, प्रेम पथिक, करुणालय और कानन कुसुम आपकी शेष काव्य पुस्तकें हैं। कंकाल, तितली और इरावती (अधूरा) आपके उपन्यास हैं। आकाश दीप, इंद्र जाल; प्रतिध्वनि, आँधी और छाया आपके कहानी संग्रह हैं। स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, विशाख, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्य श्री और एक घूँट आपके नाटक हैं। चित्राधार तथा 'काव्यकला और अन्य निबंध' आपके निबंध संग्रह हैं।

गंभीर अध्ययनशीलता और गहन अनुभूति जनित अपनी ऊँची कल्पनाओं को व्यक्त करने के लिये उनके पास पुष्ट और परिमार्जित भाषा थी। जो प्रसाद जी की भाषा मे क्लिष्टता का आरोप करते हैं, वे यह जान लें कि उनकी भाषा यदि वर्तमान हिंदुस्तानी के रूप मे रक्खी जाय तो उनकी शैली का पूर्ण सौंदर्य और माधुर्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। एक बात और, इस

क्लिष्टता का का कारण उनकी अभिव्यक्ति की अस्पष्टता नहीं, वरन् पाठक की अल्पज्ञता ही हो सकता है।

प्रसाद जी पूर्ण रूप से नियति वादी हैं; उनकी कविता में सर्वत्र विधाता के विधान मे अटल विश्वास व्याप्त है। विश्व-वेदना उनके हृदय में है।

प्रसाद जी एक युग की संपत्ति नहीं; वे युगातीत हैं। इसीलिए तो गुप्त जी ने उनको देहावसान होने पर कहा था, कि 'तात भस्म भी तेरे तनु की हिंदी की विभूति होगी। 'देखिये

'जयशंकर' कहते कहते ही अब भी काशी आवेंगे ।
किन्तु 'प्रसाद' न मूर्तिमान हम देवी का तब पावेंगे
तात भस्म भी तेरे तनु की हिन्दी की विभूति होगी।
दृग जो हँसते आते थे अब रोते रोते जावेंगे ॥

सुमित्रानन्दन पंत

प्रसाद, पंत और निराला, इन तीनो का नाम हिन्दी मे एक साथ लिया जाता है। हिन्दी की इन त्रिमूर्तियो मे से हरएक का अलग-अलग व्यक्तित्व है।

पंत केवल कवि है बाहर से भी, भीतर से भी। वे हिन्दी के सुकुमार कवि है। प्रकृति की गोद मे पलकर वे उसमे घुल-मिल गये हैं, इसलिये इनकी कृतियो मे (विशेषकर पूर्व कृतियो मे) प्रकृति बोल उठी है। 'मौन निमंत्रण' मे प्रकृति की प्रभावशालिनी प्रेरणा स्पष्ट है।

पंत जी कल्पना-प्रधान कवि हैं। कल्पना का ऐसा वैभव अन्यत्र कम मिलता है। कल्पना की ऊँची उड़ान 'छाया' में भली भाँति देखी जा सकती है।

पंत जी की सब से बड़ी देन हिन्दी काव्य-साहित्य के लिये है सुन्दर शब्द-विन्यास और मुक्त-काव्य-शैली। इन्होंने खड़ी बोली में ब्रजभाषा का माधुर्य भर दिया, उसे प्रशस्त किया और गेय छन्द दिया।

पंत जी की 'कला' किसी बाधा-बन्धन को मानकर नहीं चलती। केवल अकारान्त या इकारान्त के अनुसार शब्दों का लिंग-निर्णय, यदि अर्थ और लिंग का मेल नहीं खाता, उन्हें स्वीकार नहीं। प्रोफेसर (आजकल डॉक्टर) नगेन्द्र के शब्दों में कह सकते हैं, "......भाषा उसके (पंत के) कलात्मक संकेत पर नाचती है।......भाषा का इतना बड़ा विधायक हिन्दी में कोई नहीं है- हाँ, कभी कोई नहीं रहा !!"

खड़ी बोली के सभी कवियों पर (स्वर्गीय अयोध्या सिंह उपाध्याय को छोड़कर) मुहावरों का प्रयोग न करने का लांछन लगाया जाता है और पंत जी भी इसके अपवाद नहीं।

पंत जी की भाषा संस्कृत मिश्रित खड़ी बोली है, जिसमें सौष्ठव है, प्रवाह है और सब से अधिक माधुर्य है। इनका अलंकार-भांडार भरा पूरा है किन्तु वे सदैव अलंकारों पर निर्भर नहीं रहते। वे थोड़े में बहुत कहने की कला से परिचित हैं।

पंत जी ने केवल मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है और प्रचलित छन्दों के अतिरिक्त अनेक नवीन छन्द भी गढ़े हैं। इनका छन्द विन्यास संगीत मय होता है। निराला जी के साथ, इन्होंने मुक्त छन्द में भी रचना की है।

प्रकृति का यह सुन्दर गायक आजकल क्षुधितो और दलितो के स्वर मे स्वर मिलाता हुआ प्रगतिवादियो की श्रेणी मे जा खड़ा हुआ है। 'वे आँखे' की एक पंक्ति देखिये

'अंधकार की गुहा-सरीखी उन आँखों से डरता है मन।'

अथवा 'वह बुड्ढा' की ये पंक्तियाँ लें

बैठ, टेक धरती पर माथा वह सलाम करता है झुककर।
उस धरती से पाँव उठा लेने को जी करता है क्षण भर॥

फिर भी कवि की कुछ सर्वश्रेष्ठ कविताएँ उनकी प्रथम कृति 'पल्लव' मे मिलेंगी। इनका 'मौन निमंत्रण' हिन्दी कविता का अमर वरदान है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

हिंदी-जगत् के सवसे निराले व्यक्तित्व का नाम 'निराला' है। निराला का विकास समझना वर्तमान हिन्दी सम्वन्धी सव विषयो की अपेक्षा अधिक क्लिष्ट और दुरूह है।

निराला जी की प्रतिभा वहुमुखी है। वे उच्च कोटि के गद्यकार हैं। 'अप्सरा', 'अलका' 'प्रभावती' और 'विल्लेसुर वकरिहा' जैसे उपन्यासो के वे रचयिता हैं। 'सखी' और 'लिली' जैसे कहानी संग्रहो में 'देवी'-सी स्पर्शी कहानी प्रदान करने वाले आप ही है। 'प्रबन्ध पद्म' जैसी ठोस समालोचनात्मक पुस्तक के निबंध कार भी 'निराला' ही है।

किन्तु कवि निराला को पाकर हिंदी कविता का सुहाग चमक

उठा है । काव्य-परम्परा के रूढ़ि प्रिय परिपालकों के लाख चीखने-चिल्लाने और कीचड़ उछालने पर भी, निराला जी हिंदी के क्रांतिकारी कवि और वर्तमान रहस्यवाद स्कूल के एक प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हो कर ही रहे ।

आखिर वही हुआ जो ये करने आये थे । कविता-कला का छन्द-बन्धन छिन्न-भिन्न हो गया, उसके अनुभूति-क्षेत्र की सीमाएँ बदल करही रहीं । अतुकांत, स्वच्छंद और तथा कथित 'रबड़-केंचुआ' छंदो के सफल निर्माण के द्वारा आपने हिंदी की गौरव-वृद्धि की है । जहाँ एक ओर आपने 'जूही की कली' लिखी है, वहाँ दूसरी ओर आपकी कविता का विषय 'कुकुर मुत्ता' बन गया है । विषय-चुनाव और अभिव्यक्ति का इतना स्वच्छंद कवि 'निराला' को छोड़ कर हिंदी मे अन्य कोई नहीं ।

हिंदी मे 'गीति-काव्य' का बीज वपन करने का श्रेय आपको ही है । पंडित नंददुलारे वाजपेयी के शब्दो मे, "संगीतज्ञ होने के कारण शब्द-संगीत परखने और व्यवहार मे लाने मे वे आधुनिक हिंदी के दिशा-नायक हैं । अनुप्रास के वे आचार्य है ।"

निराला जी की भाषा संस्कृत मिश्रित है । भाषा के आप इतने वड़े आचार्य हैं कि 'जूही की कली' जैसी कोमल रचना के साथ 'जागो फिर एक वार' के समान वीर-रस का काव्य भी आपने दिया है ।

'निराला' सा दार्शनिक प्रसाद जी और महादेवी जी को छोड़ कर हिंदी मे कोई नही है । अद्वैतवाद (ब्रह्म और जीव एक हैं ऐसा सिद्धांत) पर पूर्ण आस्था होने से अस्पष्ट रहस्य वाद आपकी रचनाओ मे नही । इनकी 'तुम और मैं' नामक कविता इस बात का यथेष्ट प्रमाण है ।

निस्संदेह निराला जी की कुछ रचनाएँ अमर है। 'गीतिका,' तुलसीदास और 'नये पत्ते' आपकी सुन्दरतम रचनाएँ है, कवि की 'जागो फिर एक बार' की कुछ पंक्तियाँ देखिये

आँखें अलियों-सी
किस मधु की गलियों में फँसी
बंद कर पाँखें
पीरही हैं मधु मौन
अथवा सोई कमल-कोर कों में ?
बंद हो रहा गुंजार
जागो फिर एक बार।

पं० बलदेव प्रसाद मिश्र

मिश्र जी चाहे रायगढ़ में हो, रायपुर में हो, चाहे राजनांदगाँव में, सर्वत्र वे एक साहित्यिक वातावरण का निर्माण कर डालते है, इस बात का अनुभव इन पंक्तियों के लेखक को है। मिश्र जी का जीवन ही साहित्यमय है। साहित्यिक-परिवार में जन्म लेने के कारण साहित्य-सृजन उनका पैतृक-गुण हो गया है, जिसका क्रम अभी टूटा नहीं, नई पीढ़ी की ओर बढ़ता ही जाता है।

प्रसिद्ध समालोचनात्मक ग्रंथ 'तुलसी दर्शन' के रचयिता मिश्रजी, श्रेष्ठ कवि भी हैं, नाटककार भी। उपन्यास मिश्रजी ने लिखा पर पूरा होकर वह हिंदी-जगत् में नहीं आ पाया; कहानियाँ आपने दो ही चार लिखी है।

'शंकर दिग्विजय' (अब नवीन रूप में 'क्रांति' नाम से प्रकाशित हुआ है), असत्य संकल्प, वासना वैभव तथा समाजसेवक आपके नाटक है। शृङ्गार शतक, वैराग्यशतक आदि छोटी मोटी काव्य-पुस्तकें आपने लिखी ही हैं; पर 'कोशल किशोर' तथा 'साकेत संत' जैसे महाकाव्य मिश्र जी की जीवन-साधना के फल हैं। जीवन-दर्शन पर मिश्र जी का जो भी चिंतन है और जो भी अनु-भूतियाँ हैं गीता, भागवत और रामचरितमानस आदि के अनुशीलन से जो भी उन्होंने पाया है, वह 'जीवन-संगीत' मे सन्निहित है। मिश्र जी ने 'जीवन संगीत' मे प्रसन्नता, आशा और उल्लास के राग अलापे है। एक छोटी सी पुस्तक होने पर भी यह आपकी अत्यन्त सुन्दर रचना है। इसका एक उदाहरण-अप्रासंगिक न होगा :

दो दिन के जीवन मे कल ?
कल भूत भविष्यत् वाले,
कल-कल पर आकुलता क्या ?
तू अपना आज सजाले ॥

× × ×

कैलाश भ्रमण फिर करना
निजपुर में पहले रहलो।
'हर हर' फिर कहते रहना
'नर-नर' तो पहले कहलो ॥

× × ×

काँटों मे कुसुम खिले हैं
पत्थर में रत्न मिले हैं।
दुःखों से घबराना क्यों ?
वे सुख के सुदृढ किले हैं ॥

इनके अतिरिक्त आपने 'जीव-विज्ञान' जैसी गंभीर पुस्तक तथा 'खटमल, मच्छर' जैसी व्यंग्य-विनोद से भरी हुई फुटकल रचनाओं का संग्रह 'कुमकुमा' (अप्रकाशित) भी लिखे हैं। आपका 'मादक प्याला' उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद है।

आपने ब्रजभाषा मे भी लिखा है, हिंदी (खड़ी बोली) में भी, हिन्दुस्तानी में भी। किन्तु संस्कृत-गर्भित परिपुष्ट एवं प्रवाह युक्त भाषा का प्रयोग आपने विशेष रूप से किया है।

आपने इतिवृत्तात्मक रचनाएँ भी लिखी हैं, रहस्यात्मक भी और प्रगतिशील भी। छायावादी रचनाओं से भी मिश्र जी प्रभावित नहीं हुए ऐसी बात नहीं। सड़ी-गली रूढ़ियों के विध्वंस के लिए आपने क्रांति का आवाहन भी किया है। किन्तु नवयुवकों मे स्फूर्ति भरने की बात आपको सबसे अच्छी लगती है। 'नवयुवक' मिश्रजी की इसी कोटि की रचना है।

सुभद्राकुमारी चौहान

राजनीति मे नारीवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली सुभद्रा ने वस्तुतः साहित्य में भी नारी जाति की भावनाओं और अनुभूतियों को अपनी रचनाओं में बड़ी स्वाभाविकता से चित्रित किया है। यथार्थ में आप हिन्दी की प्रथम राष्ट्रीय कवियित्री कही जा सकती हैं।

सुभद्रा जी की काव्य-त्रिवेणी की निम्नलिखित तीन धाराएँ हैं- दाम्पत्य, वात्सल्य और राष्ट्रीयता। दाम्पत्य सुभद्रा का

नाम लेते ही, आँखों के आगे एक सरल और स्वस्थ दाम्पत्य जीवन का चित्र प्रस्तुत हो जाता है। दाम्पत्य की सरस अनुभूतियाँ ही आपकी कविता की रसवाहिनी नस है।

अपने रूठे हुए 'प्रियतम से' यह कथन कितना संवेदनकारी है

बहुत दिनों तक हुई प्रतीक्षा
अब रूखा व्यवहार न हो।
अजी, बोल तो लिया करो तुम
चाहे मुझ पर प्यार न हो॥

वात्सल्य वात्सल्य सुभद्रा के कवित्व का सर्वश्रेष्ठ वैभव है। इनके पूर्ववर्ती वात्सल्य रस के कवि सूर और तुलसी "माता" नहीं थे। उन्होंने वात्सल्य भाव की व्यञ्जना यशोदा और कौशल्या के द्वारा करायी है। उनकी समस्त अनुभूति उनकी अपनी है। कवियित्री के ही शब्दो मे उन्होंने अपनी बच्ची के बचपन मे नया बाल्य-सुख पाया

"पाया मैंने बचपन फिर से,
बचपन बेटी बन आया।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर,
मुझ में नवजीवन आया॥"

बाल-रोदन के सौंदर्य का अनुभव भी माता के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं कर सकता, पिता भी नही, देखिये

तुम कहते हो, मुझको इसका,
रोना नहीं सुहाता है।
मै कहती हूँ, इस रोने से,
अनुपम सुख छा जाता है॥

'बालिका का परिचय' देते समय उन्होंने माता का हृदय ही उड़ेलकर रख दिया है। देखिये

यह मेरी गोदी की शोभा
सुख सुहाग की है लाली
शाही शान भिखारिन की है,
मनो कामना मतवाली

× × ×

कृष्ण चन्द्र की क्रीड़ाओं को,
अपने आँगन में देखो।
कौशिल्या के मातृगोद को,
अपने ही मन में लेखो॥

'राष्ट्रीयता' समय के आग्रह से वह राष्ट्रीयता के गहरे रंग में रंग गई। दाम्पत्य और वात्सल्य के स्थान पर राष्ट्र-प्रेम भी उनकी कविता की प्रेरणा बन गया।

बुँदेलखंड के विगत शौर्य ने कवियित्री को 'झाँसी की रानी' लिखने को प्रेरित किया। राष्ट्र के राष्ट्रीय वीर गीतों में उसका स्थान अप्रतिम हूँ। यदि सुभद्रा की और कोई कृति शेष न रहे, तब भी केवल इसी एक गीत के कारण उनकी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी।

पराधीन और परतन्त्र देश को विद्रोह-भावना कितनी सजीवता से चित्रित हो उठी है!

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नई जवानी थी।
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मनमें ठानी थी,
चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हर बोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।

गाँधी जी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय क्रान्ति के आन्दोलन ने, पुरुषों की कौन कहे, असूर्यंपश्या भारतीय नारी को भी समर-भूमि मे ला खड़ा किया, देखिये-

सबल पुरुष यदि भीरु बनें,
तो हमको दे वरदान सखी।
अबलायें उठ पड़ें देश में,
करें युद्ध घमसान सखी॥

आज से एक युग पहले, भारतीय नारी-जाति की एक प्रतिनिधि ने पराधीन राष्ट्र के वीरों का आह्वान किया था। कितना स्फूर्तिदायक था वह, कितना उद्बोधक!

आ रही हिमाचल से पुकार
है उदधि गरजता बार-बार
प्राची पश्चिम भू नभ अपार
सब पूछ रहे हैं दिग् दिगन्त
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

“यही कारण है,” श्रीयुत जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' इनके

विषय में कहते हैं, "कि सुभद्रा साहित्य के एक सीमित क्षेत्र में रह कर भी असीम-सी दीखती हैं छोटी-छोटी कृतियों के बल पर भी ये इतनी बड़ी बन बैठी हैं।

कवयित्री के निधन पर, कवि सुधीन्द्र की लेखनी से निःसृत इन पंक्तियों में सुभद्रा का ठीक-ठीक मूल्यांकन किया गया है

"दो दशाब्दियों तक जो हिन्दी काव्य को राष्ट्रीयता, दाम्पत्य-प्रेम और वात्सल्य की त्रिवेणी से आप्लावित करती रही, वे आज नहीं हैं !!"

राम कुमार वर्मा

वर्मा जी केवल कवि ही नहीं, सफल एकांकी-लेखक और समालोचक भी हैं। यदि उन्हें लेखनी मिली है तो मधुर कंठ भी।

शिक्षा के क्रमिक विकास के साथ ही मिडिल स्कूल की इन पंक्तियों

ईश्वर मुझको पास करावो अब।
और मिठाई खूब सी खावो अब॥

का लेखक आगे चल कर 'रूप राशि' 'निशीथ', 'चित्ररेखा' और 'चंद्रकिरण' जैसी गंभीर एवं उत्कृष्ट रचनाएँ दे सका है। 'कबीर का रहस्यवाद', 'संत कबीर', 'साहित्य-समालोचना' तथा 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' जिस पर नागपुर विश्वविद्यालय ने आपको डी. फिल. की उपाधि

दी है, आपके आलोचनात्मक ग्रंथ हैं। 'पृथ्वीराज की आँखें' 'रेशमी टाई', 'चारुमित्रा' तथा 'विभूति' आपके एकांकी नाटकों के सुन्दर संग्रह हैं।

वर्मा जी परिष्कृत शृंगार के कवि हैं। उनकी कोमल कल्पना के अनुरूप भाषा भी कर्ण-मधुर है। उनके अन्तस्तल से निकली कई पंक्तियाँ हृदय को झंकृत कर देती हैं जैसे,

'मैं तुम्हारी मूक करुणा का सहारा चाहता हूँ।'

× × ×

'पर तुम्हारा स्नेह खोकर मैं तुम्हारी ही शरण हूँ।'

कुमार जी की कविता पढ़ने पर ऐसा मालूम पड़ता है कि कवि हृदय में किसी से मिलने की तीव्र आकांक्षा लिये हुए है। की 'तुम्हारा हास' शीर्षक कविता से यह बात जानी जाती है, देखिये,

यह तुम्हारा हास आया।

× × ×

हाय वह कोकिल न जाने क्यों हृदय को चीर रोई।
एक प्रतिध्वनि-सी-हृदय में क्षीण हो-हो हाय सोई।
किंतु इससे आज मैं कितने तुम्हारे पास आया।

कई आलोचकों का कथन है कि यह 'मानवीय आकर्षण' ज
र, परमात्मा से मिलने की विकलता है। इसी कारण वे
यवादी कवियों की कोटि मे गिने जाते हैं।
सौंदर्य से आकृष्ट होकर भी आप क्षणभंगुरता को नहीं भूले
, वे कहते हैं

"नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत?"

इन्होंने कुछ ऐतिहासिक कविताएँ भी लिखी हैं, जिनमें 'शुजा' सबसे उल्लेखनीय है।

वर्मा जी वेदना के कवि हैं। वेदना की अस्पष्टता के कारण वे कई स्थलों पर दार्शनिक भी हो गये हैं।

आपने प्रांतीय समाजशिक्षण के सर्वोच्च अधिकारी के पद में रह कर, कुछ दिनों तक सरकारी 'प्रकाश' पत्रिका का संपादन भी किया था। यद्यपि इस बीच उन्होंने कोई ठोस साहित्यिक कार्य नहीं किया, तथापि वे दिन भूले नहीं जा सकते।

यदि एक पंक्ति मे कहना चाहें तो श्रीयुत् भगवती प्रसाद बाजपेयी के शब्दों में कह सकते हैं कि "हिन्दी मे किसी स्वतंत्र साहित्यिक प्रवृत्ति के नेता न होने पर भी उन्होंने जो लिखा है, सब मिला कर बहुत अच्छा है।"

भगवती चरण वर्मा

गद्य और पद्य पर समान रूप से अधिकार रखने वाले श्रीयुत् भगवती चरण वर्मा का व्यक्तित्व हिंदी मे सबसे निराला है। कविता के अभाव को वे कहानियों और उपन्यासों में पूर्ण करते है। उनकी गद्य की कृतियाँ हमे चिंतन देती हैं और कविताएँ जीवन और समाज को एक नये ढंग से देखने की दृष्टि।

हिंदी के अनेक नवोदित कवि (बच्चन, अंचल, दिनकर आदि) किसी हद तक वर्मा जी की कविता से प्रेरित हुए हैं।

शक्ति के उपासक इस कवि में मस्ती और बेखुदी कूट-कूट कर भरी हुई है।

वर्तमान समाज की विषमताओं और अत्याचारों में घुट-घुट कर सो जाने वाली अध-नंगी, अध-भूखी जीर्ण शीर्ण कंकाल मूर्तियों ने इस कवि को विद्रोही बनादिया है। उनकी कविता आज से अत्यंत प्रभावित है। यही कारण है कि उनकी कविता में बड़ा तीखा व्यंग है। 'भैंसा गाड़ी' उनकी मास्टर पीस प्रमुख रचना है। उसमे से कुछ पंक्तियाँ देखिये; आज की परिस्थित का कितना सच्चा चित्र है इनमें !

पैदा होना फिर मरजाना,
बस यह लोगों का एक काम !

× × ×

जो थे जीवन के व्यंग
जिन्हें मरने का अधिकार न था,
थे क्षुधाग्रस्त बिलबिला रहे
मानों वे मोरी के कीड़े
वे निपट घिनौने महापतित
बौने, कुरूप, टेढ़े मेढ़े !

वर्मा जी के शब्द 'मँजे हुए, भाव सुलझे और विचार शृंखला-क्रम बद्ध है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के शब्दों में कह सकते हैं, "इस कवि के काव्य में सावन-भादों की घहराती गंगा-सा प्रचण्ड प्रवाह है।"

कुछ अमर गीतों की रचना करने वाले इस कवि और कथालेखक का सम्बन्ध कुछ समय तक सिनेमा संसार से भी रहा है।

महादेवी वर्मा

महादेवी जी का हिन्दी के कलाकारों में प्रमुख स्थान है। आपको जितना अधिकार लेखनी पर है उतना ही तूलिका पर भी है। आप कवयित्री के रूप मे तो विख्यात हैं ही। किन्तु आपने अपनी लेखनी से हिन्दी गद्य को भी अलङ्कृत किया है। देवी जी के जैसा 'प्रोज' लिखना भी कुछ ही कवियों के लिये संभव हुआ है। 'शृङ्खला की कड़ियाँ,' 'अतीत के चलचित्र' 'स्मृति की रेखाएँ' तथा "महादेवी का विवेचनात्मक गद्य" आपके गद्य ग्रन्थ हैं। 'वंग दर्शन' का सम्पादन भी आपने किया है।

'यामा' और 'दीपशिखा' आपके संपूर्ण काव्य-संग्रह हैं। यामा मे आपकी चारो स्फुट रचना-पुस्तके नीहार, नीरजा, रश्मि और सांध्य-गीत संगृहीत हैं।

स्वभावतः दार्शनिक होने के कारण महादेवी जी ने काव्य के रहस्यवाद की प्रवृत्ति को अपनाया है। देवी जी मे अनुभूति की सचाई और गहराई है पर काव्य-कला मे सजकर आई है। कोमल और बहुधा करुण भावधारा, सुघर-रचित-शब्दावली, मँजी हुई शैली और असाधारण लयमयता ये है देवी जी की कविता के प्रधान गुण। 'द्विज' के शब्दों मे, "इनकी कविता का वैभवशाली संगीत तत्व कविता मे ही समाया रहता है।" इनकी सी कोमल कल्पना पंत को छोड़कर और किसी कवि मे नहीं है।

महादेवी जी की भाषा संस्कृत से अनुप्राणित हुई है। दार्शनिकता के आवरण से आवृत्त होने के कारण इनकी सहज भाषा भी कुछ ठहरकर समझ मे आती है।

श्री भगवती प्रसाद बाजपेयी के शब्दों में "महादेवी जी हिन्दी की सरोजिनी नायडू और कामिनी राय हैं। हिन्दी के जिस युग मे ऐसी उच्चकोटि की कवयित्री उत्पन्न हो वह युग किसी भी स्वर्ण-युग से होड़ ले सकता है।......महादेवी जी की कविता मे मीरा के प्रेम की गर्मी, कृष्ण की वंशी का संगीत और बुद्ध और ईसा जैसे महापुरुषों से ली गई करुणा का सौन्दर्य है।"

बहुधा महादेवी जी की तुलना मीरा से की जाती है। किन्तु दोनो के काव्य का आधार बहुत अन्शों में एक होने पर भी, ये दोनो दो युग की सृष्टियाँ हैं। विशुद्ध काव्य की दृष्टि से महादेवी मीरा की ऊँचाई पर कम ही पहुँचती हैं। मीरा के सहज भावोद्रेक की समता देवी जी का कला से सज्जित काव्य नहीं कर सकता। अन्तर्वेदना का जो माधुर्य मीरा में है वही बहुत अन्शों मे महादेवी में भी है। देवी जी स्वयं कहती है, "दुःख मेरे निकट जीवन का एक ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र मे बाँध रखने की क्षमता रखता है।"

और भी प्रिय जिसने दुःख पाला हो!
वर दो यह मेरा आँसू
उसके उर की माला हो।

अथवा ये पंक्तियाँ देखिये

तुम दुःख बन इस पथ से आना!
शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन;
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना!

हरिवंश राय 'बच्चन'

प्रसिद्ध 'हालावादी' कवि 'बच्चन' अपने मधुर कंठ, आकर्षक संगीत तथा मादक सौंदर्य के कारण जनता एवं विद्यार्थीवर्ग में अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया है। इतनी जल्दी किसी कवि ने इतनी लोकप्रियता नहीं पायी। कवि-सम्मेलन का यह सफल गायक, महादेवी, पंत, निराला आदि की दुरूह और गंभीर रचनाओं के सामने, सरल एवं चटकीला काव्य का निर्माण कर और भी लोकप्रिय हो गया है।

बच्चन जी के नाम से हालावाद इस बुरी तरह जोड़ा गया है कि अब तक उसे रिहाई नहीं मिल सकी। उनकी 'मधुशाला' न तो साधारण अर्थों मे मदिरा-सम्बन्धिनी है और न विशिष्ट अर्थों में आध्यात्मिक ही। बच्चन ने मदिरालय, मधुबाला, प्याला और हाला के प्रतीकों को स्वीकार करके उनका प्रयोग विभिन्न अर्थों मे किया है।

इन्होंने करीब एक दर्जन काव्य-पुस्तकों की रचना की है। क्रमशः इनकी कला का निखार होता गया है। मस्ती के गीत ('मधुशाला', 'मधुबाला' और मधुकलश') के बाद, निराशा के गीत भी लिखे हैं, जिनमें 'निशा निमंत्रण', 'एकान्त संगीत', 'आकुल अन्तर', 'विकलविश्व' और 'हलाहल' आते हैं। उत्साह और प्रणय के गीत आप उनकी 'सतरंगिनी' और 'मिलनयामिनी' मे पा सकेंगे। 'बंगाल का काल' भूखों में असन्तोष, साहस और क्रान्ति को उभाड़ने का प्रयत्न है।

बच्चन जी की कविता मे अनेक गुण हैं, जिनमे मस्ती, जीवन के प्रति खास ढंग का विलासितापूर्ण दृष्टिकोण और विद्रोह प्रमुख हैं।

सामाजिक विषमता और धार्मिक आडम्बर इन्हें पसन्द नहीं; इन पर व्यंग्य भी खूब किये हैं। संकीर्णता इसे किसी रूप में ग्राह्य नहीं। ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलमान, मन्दिर-मस्जिद की भावना से ऊपर उठने के लिये बच्चन का विचारक कहता है। देखिये

"निर्मम बनकर आज विषमता
के नियमों में आग लगाओ,
पथिक अकेले ही इस पथ पर
चिन्ता क्या है बढ़ने जाओ।"

और भी "मुसलमान औ हिन्दू हैं दो,
एक मगर उनका प्याला,
एक मगर उनका मदिरालय
एक मगर उनकी हाला,
दोनों रहते एक न जब तक
मन्दिर-मस्जिद में जाते,
लड़वाते हैं मन्दिर-मस्जिद
मेल कराती मधुशाला।"

बच्चन का कवि अभी जवान है। उसकी लेखनी क्रियाशील है। यदि युग की माँग को पहिचानने में वे सफल होते गये, तो वे और भी ख्याति पा सकेंगे। वैसे तो आपने जितना लिखा है, वही आपको जीवित रखने के लिये पर्याप्त है और हिन्दी में एक नई धारा के बहाने वाले तो हैं ही।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

'दिनकर' नाम ही साहित्य के इस युग का महान आकर्षण है। आज, ऐसों की संख्या कम नहीं है, जो कविता के क्षेत्र में दिनकर की ही कविताओं को 'सब कुछ' समझते हैं।

दिनकर की भाषा में ओज है, साथ-साथ वह संयत, परिमार्जित तथा प्रभाव पूर्ण भी है।

उनके भावों मे विगत वैभव का गायन है और भावी स्वर्णविहान की स्वप्न दर्शिता। बिहार के इस तरुण में जोश है, उमंग है और है वह स्वप्नों का कवि। चपल भाषा और मोहक भाषा के साथ उसका हर कथन चोट करने वाला होता है। दिनकर के विषय मे विख्यात समालोचक श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, " 'रेणुका' का कवि (दिनकर) हमारी उन सभी चोटों से फायदा उठाता है, जिन्हे प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण हमारा हृदय सह चुका है। वह कृषकों के नाम पर रुलाता है, वैशाली और नालंदा के नाम पर हमें उत्तेजित करता है, मिथिला और दिल्ली के नाम पर हमें 'अपना' बना लेता है। यही उसकी विशेषता है, यही उसकी दुर्बलता।" देखिये-

ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ ?
पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी,
तू पूछ, कहाँ उसने खोईं
अपनी अनंत निधियाँ सारी ?

दिनकर क्रांति का कवि है; वह उसका आह्वान करता है

क्रांति धात्रि कविते जाग उठ, आडम्बर में आग लगादे,
पतन पाप पाखंड जलें जग में ऐसी ज्वाला सुलगादे?
विद्युत् की इस चकाचौंध में देख दीप की लौ रोती है,
अरी हृदय को थाम, महल के लिए झोंपड़ी बलि होती है!

कवि की वाणी में राष्ट्र की वेदना उभर आई है। भूखे प्यासों का संताप उनकी कविताओं में ज्यों का त्यों उभर आया है। कवि का 'हाहाकार' राष्ट्र का ही हाहाकार है। उनके अनुसार सयाने तो गम खा शायद आँसू पीकर जी लेते हैं, पर अबोध शिशु का यह चित्रण कितना मार्मिक है!

पर, शिशु का क्या हाल सीख पाया न अभी जो आँसू पीना?
चूस-चूस सूखा स्तन माँ का सो जाता रो विलप नगीना

× × ×

कब्र-कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती है
''दूध? दूध?'' की कदम-कदम पर सारी रात सदा होती है

× × ×

वे भी यहाँ दूधसे जो अपने श्वानों को अन्हवाते हैं
ये बच्चे भी यहीं कब्र में "दूध-दूध?" जो चिल्लाते हैं?

राष्ट्र के चिर उपेक्षित अर्धांश, नारी के प्रति इस राष्ट्रीय कवि का हृदय अत्यंत उदार है। चिता में युवतियों को अपने स्वामियों के साथ हँसते-हँसते जलते देखकर कवि एक बार रो पड़ता है

कितनी द्रुपदा के बाल खुले,
    कितनी कलियों का अंत हुआ!
वह हृदय खोल चित्तौर अरे,
    कितने दिन ज्वाल-वसंत हुआ॥

चिर दुखिता सीता के प्रति वे कहते हैं

“हा, हुए राम तुमने विपदायें झेलीं
थी कीर्ति उन्हें प्रिय तुम बन गईं अकेली।
वैदेहि ! माना कलकिनी प्रिय ने
रानी ! करुणा की तुम बन गईं पहेली॥”

दिनकर की इन्हीं विशेषताओं के कारण, एक बार इनकी कविता का रस चख लेने के बाद, सहज ही लोग विशेष कर तरुण उसका स्वाद नही भूल सकते !

परिशिष्ट १

रस

काव्य के पढ़ने, सुनने तथा दृश्य काव्य (नाटक) के देखने से जो आनंद की अनुभूति होती है उसे रस कहते हैं। रस ही काव्य का प्राण है।

रस के आधार भाव हैं। भाव दो प्रकार के होते हैं (१) स्थायी भाव (२) संचारी भाव, जिन्हे व्यभिचारी भाव भी कहते है। स्थायी भाव बहुत समय तक मन में रहकर रस का स्वरूप ग्रहण करते हैं। संचारी भाव स्थायी भाव के सहायक के रूप में थोड़ी देर के लिए आते और चले जाते है।

इनके अतिरिक्त रस की उत्पत्ति के लिए विभाव और

अनुभाव की आवश्यकता होती है। ये क्रमशः रस के कारण और कार्य कहे जाते हैं।

विभाव के दो भेद होते हैं

(१) आलम्बन जिस वस्तु, व्यक्ति या घटना के कारण स्थायी भाव की उत्पत्ति होती हैं, उसे तत्संबंधी रस का आलम्बन कहते हैं जैसे करुण में मृत व्यक्ति, वात्सल्य मे संतान।

(२) उद्दीपन जिस परिस्थिति से उत्पन्न स्थायी भाव उद्दीप्त या तीव्र हो जाता है, उसे तत्सम्बन्धी रस का उद्दीपन कहते हैं, जैसे शृङ्गार में सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, वसंत और संगीत।

अनुभाव हमारे मन के भाव जिन शारीरिक चेष्टाओं के कारण व्यक्त होते हैं उन्हें अनुभाव कहते हैं। दाँत कटकटाना, आँखें लाल होना, मारने दौड़ना आदि क्रोध के भाव को प्रकट करने वाले रौद्र रस के अनुभाव है।

करुण रस का उदाहरण :

ऐसे बिहाल बिवाइन सौं भये कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महादुख पाये सखा, तुम आये इतै न किते दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दसा, करुना करिके करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोये॥

इस उदाहरण में स्थायी भाव शोक है।

सचारी भाव मोह, विषाद, जड़ता, ग्लानि आदि संचारी भाव हैं।

आलम्बन प्रिय मित्र सुदामा का क्लेश है।
उद्दीपन बिवाँई और दीन दशा।
अनुभाव निश्वास, आँसू बहना आदि।
इसी प्रकार से अन्य रस भी समझाये जायँ।

(१) शृंगार रस

शृङ्गार के दो भेद होते हैं। उस प्रेम के वर्णन को जब प्रेम-पात्र पास हो, संयोग शृङ्गार करते हैं; जब प्रेम-पात्र दूर हो तब उसे वियोग या विप्रलंभ शृङ्गार कहते हैं

उदाहरण संयोग शृंगार

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि॥

उदाहरण वियोग शृंगार

इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखतें, बिन देखे अकुलाहिं॥

(२) हास्य रस

चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर॥

टीप यहाँ 'वृषभानुजा 'और' हलधर के बीर' के श्लेष पर हास्य निर्भर है।

वृषभानु=बैल ; वृषभानुजा=बैल की बहिन।
हलधर=बैल ; हलधर के बीर=बैल के भाई॥

(३) वीर रस

वीरों का कैसा हो वसन्त ?
आ रही हिमांचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार,

प्राची पश्चिम भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

टीप वीर रस के युद्ध वीर के अतिरिक्त दानवीर, धर्मवीर और दया वीर भेद भी है।

(४) वात्सल्य रस

बरदंत की पंगति कुन्द कली अधराधर पल्लव बोलनकी।
चपला चमके घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की॥
घुंघरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलन की।
नेवछावर प्रान करैं तुलसी वलिजाऊँ लला इन बोलन की॥

(५) भयानक रस

हुए कई मूर्छित घोर त्रास से,
कई भगे मेदिनी में गिरे कई।
हुई यशोदा अति ही प्रकंपिता,
व्रजेश भी व्यस्त समस्त होगये॥

(६) रौद्र रस

उस काल मारे क्रोध के तनु काँपने उनका लगा।
मानो हवा के जोर से सोता हुआ सागर जगा॥
मुख बाल रवि सा लाल होकर ज्वाल सा बाधित हुआ।
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ॥

(७) अद्भुत रस

लीन्हो उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहिकाल बिलंब न लायो।
मारुत नंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभलीक लसी कपि यो धुकिधायो॥

(८) वीभत्स रस

सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी वैताल भूत साथ लिये भूतनाथ,
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ-हाथ जोरि कै॥

(९) शांत रस

साधू ऐसा चाहिये जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहे थोथा देय उड़ाय॥

परिशिष्ट २

छंद

कविता के बंध का नाम छंद है। गद्य मे व्याकरण के नियमों के अतिरिक्त और कोई बन्धन नहीं रहता, किन्तु पद्य में व्याकरण के साथ साथ पिंगल (छंद शास्त्र) के नियमों का भी पालन करना पड़ता है। हिन्दी मे आजकल मुक्तक छंद भी लिखे जाते हैं, जिसमे छंद शास्त्र का कोई बन्धन नहीं रहता, केवल लय ही उसे गद्य से भिन्न करती है।

छंद दो प्रकार के होते है (१) मात्रिक और (२) वर्णिक। मात्रिक छंदों मे केवल मात्राओं का विचार किया जाता है और वर्णिक छंदों मे मात्रा तथा वर्ण दोनों का।

मात्रा—शब्दों के उच्चारण मे जो समय लगता है उसका मान मात्राओं द्वारा किया जाता है। वर्ण दो प्रकार के होते है—(१) ह्रस्व और (२) दीर्घ। ये छंद शास्त्र मे क्रमशः लघु और गुरु के नाम से जाने जाते है। लघु का संक्षिप्त नाम 'ल' है और इसका चिह्न है एक खड़ी पाई जैसे (।), गुरु का संक्षिप्त नाम

‘ग’ है और इसका चिह्न है एक टेढ़ी रेखा, जो अंग्रेजी के ‘एस’ अक्षर के आकार की होती है यथा (S)। गुरु वर्ण की दो मात्राएँ मानी जाती हैं और लघु वर्ण की एक। मात्रा स्वरों की होती है व्यंजनों की नहीं।

लघु वर्ण अ, इ, उ, ऋ।

गुरु वर्ण (१) आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, और औ। (२) अनुस्वार और विसर्ग वाले वर्ण, जैसे—अं और दुः। (३) संयुक्त वर्ण से पूर्व का वर्ण, जैसे सत्य मे स, और कर्म मे क। (४) हलंत व्यञ्जन के पूर्व का वर्ण जैसे मरुत् में रु।

टीप (१, व्यंजन रहित वर्णों की कोई मात्रा नहीं होती।

(२) वर्ण के ऊपर चंद्रविंदु (ँ) लगाने से उसकी मात्रा में कोई फर्क नहीं पड़ता, जैसे ऊँचा मे ऊ गुरु ही रहेगा और हँसना मे ह लघु।

वर्णिक छंदों मे लघु-गुरु वर्णों के क्रम का विचार किया जाता है। उनमे तीन-तीन वर्णों के आठ गण माने गए हैं। वर्णिक छंदो मे गणो का ध्यान रखा जाता है।

तीन गुरु मगण जैसे मायावी। तीन लघु नगण जैसे, मनन। आदि गुरु भगण जैसे रावण। आदि गुरु यगण जैसे बहाना। मध्य गुरु जगण—जैसे महान। मध्य लघु रगण जैसे भारती। अंत गुरु सगण जैसे सपना। अंत लघु तगण जैसे संसार।

टीप गणो के संकेत वर्ण क्रमशः म, न, भ, य, ज, र, स और त हैं।

छंदों मे यति—छंदो को पढ़ते समय बीच-बीच मे कुछ रुकना पड़ता है। इस ठहरने को यति कहते हैं।

छंदों के सम विषमादि भेद—जिस छंद के चारों चरण समान

मात्रा अथवा समान वर्णों के रहते हैं उसे सम कहते हैं; जिसके पहले-तीसरे या दूसरे-चौथे चरण मे समानता रहती है उसे अर्ध-सम, और जिसके सब चरण असमान हों उसे विषम कहते हैं।

मात्रिक छन्दों के उदाहरण

(१) दोहा लक्षण मात्रिक अर्धसम, पहले और तीसरे चरणों में १३ मात्राएँ और दूसरे और चौथे में ११, अन्त में गुरु लघु।

उदाहरण तुलसी पावस के समै, धरी कोकिला मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन॥

(२) सोरठा लक्षण दोहे का उल्टा, पहले और तीसरे चरणों में ११ मात्राएँ और दूसरे और चौथे मे १३।

उदाहरण सकर-चाप जहाज, सागर रघुबर-बाहु बल।
बूड़े सकल समाज, चढ़ेउ जो प्रथमहिं मोहबस॥

चौपाई लक्षण मात्रिक सम, प्रत्येक चरण मे १६ मात्राएँ, अन्त में गुरु लघु न हो।

उदाहरण
बहुरि बदनुविधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥

रोला लक्षण मात्रिक सम, प्रत्येक चरण मे २४ मात्राएँ, यति ११वीं और १३वीं मात्रा पर; अन्तिम दो वर्ण कभी लघु कभी गुरु।

उदाहरण निर्वासित थे राम राज्य था कानन में भी।
सच ही है श्रीमान, भोगते सुख वन में भी॥

2. गीतिका लक्षण मात्रिक सम, प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ, १४ और १२ मात्राओं पर यति, अन्तिम दो वर्ण क्रमशः लघु और गुरु।

उदाहरण उत्तरा के धन रहो तुम उत्तरा के पास ही।

सार लक्षण मात्रिक सम, प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ; अन्तिम दो वर्ण गुरु; यति १६ और १२ मात्राओं पर।

उदाहरण सबको मैंने कहते पाया तेरी राम कहानी। या
बचपन की नादानी होगी, यौवन की हैरानी।
अरे अभी तो शुरू हुई है तेरी राम कहानी॥

सरसी लक्षण मात्रिक सम, प्रत्येक चरण मे २७ मात्राएँ, १६ और ११ मात्राओ पर यति, अन्तिम दो वर्ण गुरु और लघु।

उदाहरण जड़ चेतन यह बता रहे हैं तेरी बात अनूप।

८ कुंडलिया लक्षण एक दोहा + एक रोला; छः पंक्तियो का यह छन्द विषम मात्रिक है; दोहे का अन्तिम चरण रोला के आदि मे। कुण्डलिया जिस शब्द से शुरू होता है, वही शब्द अन्त मे रहता है।

उदाहरण रंभा झूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते ह्वै गये अरु ह्वैहै इहि खेत॥
अरु ह्वैहै इहि खेत मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै दीठि तुमपै अति दीने॥
बरनै 'दीनदयाल' हमै लखि होत अचंभा।
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रंभा॥

छप्पय लक्षण रोला + उल्लाला: मात्रिक विषम। (उल्लाला मे पहले और तीसरे चरण मे पन्द्रह, और दूसरे और चौथे चरण मे तेरह मात्राएँ होती है।)

उदाहरण तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सो जल परसन हित मनहुँ सुहाये॥
किधौं मुकुर मे लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥